शक्ति तत्व
विविध आयाम

आचार्य पुष्पेन्द्र कुमार

शक्ति तत्त्व : विविध आयाम

शक्ति तत्त्व : विविध आयाम

आचार्य पुष्पेन्द्र कुमार

(पूर्व-अध्यक्ष एवं आचार्य संस्कृत विभाग,
दिल्ली युनिवर्सिटी, दिल्ली)

ईस्टर्न बुक लिंकर्स

दिल्ली : : (भारत)

प्राक्कथन

मातृ देवी की पूजा-अर्चना बड़े ही प्राचीन काल से विश्व भर में व्यापक रही है। 'मातृदेवो भव' हमारे वैदिक साहित्य में सर्वत्र व्याप्त है। परवर्त्ती काल में मातृ देवी के स्थान पर पुरुष देवताओं की प्रधानता से पूजा होने लगी थी। परन्तु भारत में शक्ति देवी की परिकल्पना ने मातृ-शक्ति को प्रधानता दी तथा सभी नियामक देवताओं में शक्ति को प्रधान रूप से स्वीकारा। शक्ति के बिना कोई भी देवता देवत्व प्राप्त नहीं कर सकता। 'शिव शक्त्या युक्तो यदि भवति शक्तः प्रभवितुम्'। अर्थात् शिवजी भी तभी सृष्टि कर सकते हैं जब वे शक्तियुक्त हों। हमारे यहां परमब्रह्म के विशेषणों में एक विशेषण 'सर्वशक्तिसम्पन्न' या 'शक्त्यात्कम् ब्रह्म' मिलता है। अर्थात् शक्तिमान को ही ब्रह्म कहते हैं। शक्ति और शक्तिमान् दो अलग तत्त्व या सत्ता न होकर एक ही तत्त्व है। जैसे चन्द्रमा एवं चाँदनी दो पृथक नहीं हैं उसी प्रकार शक्ति-शक्तिमान् दोनों एक हैं।

परवर्त्ती काल में इसी कारण से हमारे सभी देवता शक्तियों सहित पूजित हुए हैं। यथा लक्ष्मी-नारायण, गौरी शंकर, उमा-शंकर, सीता-राम, राधे-श्याम आदि। अर्धनारीश्वर की परिकल्पना भी सम्भवतः इसी सिद्धान्त पर आधारित है। कालिदास कहता है 'वागर्थाविव सम्पृक्तौ' वाणी और अर्थ जैसे सम्पृक्त हैं उसी प्रकार 'शिव-शक्ति' संसार के माता-पिता हैं तथा एक ही तत्त्व के दो पहलू हैं।

भारत में शाक्त-धर्म स्त्री-देवता को सर्वोच्च सत्ता के रूप में स्वीकार करता है। जिसे परब्रह्म कहा जाता है—वही पराशक्ति है जो संसार का उद्भव-पालन-विकास एवं संहार करती है। ब्रह्मा-विष्णु-महेश उसी के इशारे पर सृष्टि का सञ्चालन करते हैं। तुलसीदास के शब्दों में 'उद्भवस्थिति संहारकारिणी क्लेशहरिणीं सर्वश्रेयस्करी सीता नतोऽहं रामवल्लभाम्।।' अर्थात् आद्या शक्ति ही इस जगत् की माता है सञ्चालिका है। श्रेयस् एवं प्रेयस् प्रदान करने वाली है। जगत् की रक्षा के निमित्त दुष्टों का संहार करने वाली है। सप्तशती के अन्तिम स्तोत्र में कहा गया है—

सर्वरूपमयी देवी सर्वं देवीमयं जगत्।
अतोऽहं विश्वरूपां त्वां नमामि विश्वेश्वरीम्॥

भक्त की दृष्टि में सारे संसार में जगदम्बा ही प्रमुख है, वही सभी प्राणियों में व्याप्त है। संसार की स्वामिनी है—उसको नमस्कार है माँ के रूप में ईश्वरीय सत्ता कुछ अपनी सी, अपने पास ही, प्रेममयी, वात्सल्यमयी, नजर आती है। वह नारायणी भी है, वह शैव शक्ति भी है। वही वैष्णवी है, वही रुद्राणी है। लक्ष्मी भी वही, दुर्गा भी वही, उमा भी वही तथा जगदम्बा वही है। यही कारण है कि वह भारत के ग्राम-ग्राम में विराजमान है, जनमानस द्वारा पूजित है, सर्वसुलभ है, मंगलदायिनी है, दुष्टों का दमन करने वाली है तथा भक्तों का पालन-पोषण करने वाली है।

शक्ति सिद्धान्त भारत के सभी दर्शनों में अन्तर्धारा के रूप में स्वीकृत हुआ है। पुराणों एवं तत्रों में शाक्त-धर्म या शक्ति सिद्धान्त अपनी ऊँचाइयों पर पहुँचा। यह लोकधर्म के रूप में पूरे भारत में व्याप्त हैं। यद्यपि कौलधर्म या कौलमार्ग कुछ कारणों से सामाजिक स्वीकृति प्राप्त नहीं कर सका। तन्त्रों में कहा गया है कि 'भुक्तिश्च मुक्तिश्च करस्थ एव' अर्थात् इस लोक में आनन्द एवं भोग तथा अन्त में देवत्व प्राप्ति या मोक्ष दोनों ही सुगमता से प्राप्त होते हैं।

प्रस्तुत पुस्तक समय-समय पर लिखे गए मेरे निबन्धों का संग्रह या संकलन है। इसमें शक्ति सम्बन्धी अनेक समस्याओं का, मत-मतान्तरों का, दार्शनिक सिद्धातों का परिशीलन हुआ है। तन्त्रों के सम्बन्ध में कई भ्रान्तियाँ भी प्रचलित रही हैं—उनका निराकरण किया गया है। विशेषकर शक्ति तत्त्व का दार्शनिक पक्ष उभर कर सामने आया है। भाषा को यथासम्भव सुगम एवं सरल बनाया गया है। जिससे सभी को यह तत्त्व—अर्थात् शक्तिवाद सरलता से हृदयंगम हो सके।

अन्त में ईस्टर्न बुक लिंकर्स के स्वामी श्री रवि मल्होत्रा का हृदय से आभार प्रकट करता हूँ जिन्होंने इसके प्रकाशन में तत्परता दिखाई। अपनी धर्मपत्नी का भी आभारी हूँ जिनकी प्रेरणा सदा ही प्राप्त हुई तथा हिन्दी में पुस्तक लिखने का आग्रह किया। मेरे मित्रों, छात्रों को तथा विद्वानों को धन्यवाद करता हूँ जिनकी सदाशयता तथा सहायता से यह कार्य पूरा हुआ। माँ जगदम्बा की कृपा ही इसकी पूर्णता में सहायक हुई। त्रुटियाँ मेरी हैं—अच्छाईयाँ माँ का आशीर्वाद! देवी के दयालु भक्तों को सादर समर्पित।

दिनांक : १०-२-२००४, दिल्ली। —आचार्य पुष्पेन्द्र कुमार

विषयानुक्रमणिका

अध्याय 1

भूमिका

'शक्ति' शब्द का अभिप्राय शक्ति अर्थात बल से है। जीवन की विभिन्न घटनाओं में इसे देखा जा सकता है। दुर्गासप्तशती का कहना है (**या देवी सर्वभूतेषु शक्तिरूपेण संस्थिता**) कि हम लोगों में से प्रत्येक में शक्ति अन्तर्निहित है, जो सर्वोच्च देवी, पराशक्ति की ही अभिव्यक्ति ओर उसका अंश है। देवताओं की शक्तियाँ विभिन्न नामों और विशेषणों के द्वारा जानी एवं पूजी जाती हैं। लक्ष्मी, श्री पृथ्वी आदि वैष्णव शक्तियाँ हैं तथा शैव शक्तियों के नाम हैं–दुर्गा, पार्वती काली आदि। इसी प्रकार अन्य शक्तियाँ हैं। त्रिदेव–ब्रह्मा, विष्णु और शिव अपनी–अपनी शक्तियों के द्वारा ही जगत् का सृजन, पालन और विनाश करते हैं। शक्ति और शक्तिमान् के बीच चुनाव में (यद्यपि वे एक ही हैं) मानवीय मस्तिष्क के लिए यह स्वाभाविक ही था कि वह शक्ति की ओर झुकता, जो कि देवताओं का भी आधार है। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि इतिहास की निश्चित अवधि के दौरान और देश के कतिपय क्षेत्रों में स्त्री देवताओं या शक्ति की पूजा पुरुष देवताओं की अपेक्षा अधिक महत्व रखती थीं। शक्ति–सिद्धान्त में सामान्य जनों के विश्वास के चिन्तन की यह परिणति है कि जीवन भी उसी शक्ति के द्वारा संचालित है। भारत में प्रत्येक गाँव, नगर, शहर, देश, जंगल, नदी किनारों में प्रमुख देवियाँ निवास करती हैं, जिनकी पूजा की जाने लगी। इन सभी देवियों के द्वारा उपासक के पीड़ित मन को सान्त्वना मिलती है तथा उसने इन देवियों का दर्शन पूजा के द्वारा पाया है तथा उनसे व्यक्तिगत सम्पर्क स्थापित किया है।

शक्ति की अवधारणा में हम दो तत्त्वों का सुखद मिश्रण पाते हैं–एक आनुभविक और दूसरा सैद्धान्तिक। आनुभविक पक्ष में शक्ति का विचार विश्वोत्पत्ति के विचार से सम्बद्ध है। मनुष्य का विश्वास है कि पुरुष और

स्त्री–इन दोनों के सम्मिलन के बिना किसी भी तरह की सृष्टि सम्भव नहीं है। इस प्रकार मनुष्य ने आदि पिता और आदि माता की अवधारणा का प्रतिपादन किया।

मानव समाज की प्रारम्भिक अवस्था में माँ का अति महत्वपूर्ण स्थान था और इस प्रकार ब्रह्माण्डिय माँ सबसे महत्त्वपूर्ण देवी हो गई। भारत में सिन्धु–सभ्यता के काल से, अब तक शक्ति को योनि एवं शिव को लिंग के प्रतीक के द्वारा प्रदर्शित एवं पूजित किया जाता रहा है।

विश्व के सभी प्रारम्भिक समाजों में, आचरण के मानदण्ड, आदत, दायगत परम्परा आदि सभी सांस्कृतिक विशेषताओं का प्रतिपादन एवं उनका प्रचार–प्रसार स्त्रियों ने किया था। स्त्री केवल सृजन की ही प्रतीक नहीं है, अपितु वह जीवन की वास्तविक निर्मात्री भी है। उसके अंग एवं गुण उत्पादक शक्ति से सम्पन्न हैं। अतः वे जीवन प्रदान करने वाले प्रतीक हैं। इसकी पुष्टि हड्डी, हाथी के दाँत एवं पाषाण पर पुरापाषाणिक स्त्री की लघु मूर्ति की विपुल संख्या में अन्वेषण से हुई है, जिसमें स्त्री के अंग सम्पूर्ण रूप से अतिरंजित हैं।

मानव इतिहास की प्रारम्भिक अवस्थाओं में मातृदेवी एक संयुक्त देवी थी। मौलिक रूप से वह स्त्री–सिद्धांत अर्थात् सृजन की प्रतीक थी, जिसकी कल्पना जीवन–प्रदात्री के रूप में की गई थी। उसे पृथ्वी[1] के साथ भी सम्बद्ध किया गया था, जो गर्भ का रूप धारण करती थी तथा जिसमें फसल उगती थी। सम्पूर्ण विश्व में सामान्यतया पृथ्वी की प्रतिष्ठा स्त्री रूप में की जाती है। कृषि के प्रमुख देवता मुख्यतया देवियाँ ही हैं। कारण, उर्वरता एवं प्रजनन की अवधारणा स्त्री से सम्बन्धित है। यह विचार कि उर्वरता की देवी को निश्चित रूप से स्वयं भी ऊर्वर होना चाहिए। स्वाभाविक रूप से मातृदेवी की अवधारणा को बच्चों की संरक्षिका के रूप में परिगणित करता है और बच्चों की संरक्षिका उन्हें उनके यौवन और बुढ़ापे में भी परित्यक्त नहीं कर सकती। उसे (देवी) किसी भी हाल में उन्हें व्याधियों एवं अन्य

1. माताभूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः, अथर्ववेद, पृथ्वीसूक्त 12/1

कठिनाइयों से बचाना है। यही कारण है कि सम्पूर्ण विश्व में मातृदेवियाँ स्पष्ट रूप से रोगों एवं रोगमुक्ति से सम्बद्ध रही हैं। इस प्रक्रिया में मानव जीवन के मौलिक तत्त्वों का प्रदर्शन करती हुई उसे एक संयुक्त देवी का रूप देते हुए उसकी मौलिक अवधारणा में अन्य अनेक गुण जोड़े गए। अवधारणात्मक चिन्तन के विकास के साथ उसके गुण एवं कार्य अपने अनेक रूपों से गुजरते हुए कभी देवत्व प्राप्ति की, विशिष्टता भी दिखलाई एवं मूर्त्तरूप भी प्राप्त किए।

स्त्री के साथ पृथ्वी का तादात्म्य यह द्योतित करता है कि पृथ्वी और स्त्रियों के कार्य समान हैं। एक नियंत्रण के अन्दर स्वाभाविक (प्राकृतिक) उत्पादकता (सर्जनात्मक) लाने के लिए आदि मानवों ने मानवीय जननेन्द्रियों को सर्वोच्च महत्व दिया तथा उसे यौन सम्मिलन (यौन एकता) के द्वारा दर्शाया और इसका अनुसरण अपने अन्तिम लक्ष्य की पूर्ति के लिए किया। मनुष्य के यौन अंगों से सम्बन्धित कर्मकाण्ड का एक बार व्यापक प्रचार हुआ। इस बात के स्मृतिचिह्न अभी भी पिछली शताब्दियों में पाए जाते हैं। मोहनजोदड़ो में हमें लिंग और योनि के प्रतीक मिलते हैं, जो सम्भवतः जीवन प्रदायक ताबीज के रूप में प्रयुक्त होते थे। जबकि हड़प्पा में बहुत-बड़ी संख्या में नुकीले लिंग प्राप्त हुए हैं जो पुरुष के यौन अंग को प्रदर्शित करते हैं। साथ ही बड़ी संख्या में पत्थर के तरंगित गोलाकृति रूप मिले हैं, जिसमें स्त्री अंग दर्शाया गया है।[2] तांत्रिक सम्प्रदाय का उद्भव तीसरी शताब्दी ई. पू. के हिन्दू धर्म के इस प्राक्-ऐतिहासिक अधःस्तर की गहराई में छिपा है। तांत्रिक श्रीचक्र और कुछ नहीं; बल्कि यह स्त्री के जननेन्द्रिय का प्रतीक माना गया है।[2] प्रारम्भ में लिंग कृषि कर्म का प्रतीक था, जबकि योनि से पृथ्वी का बोध होता था। इस बात की पुष्टि मनु के कथन से होती है[3]–

इयं भूमिर्हि भूतानां शाश्वती योनिरुच्यते।

---

1. मैके– फी.ई; एट मोहनजोदड़ो पृष्ठ - 5
2 फ्रेजर - A.A.O., 194 F
3. मनुस्मृति - IX/37

पृथ्वी माता की अवधारणा मनुष्य के विभिन्न समुदायों के द्वारा अर्जित संस्कृति की मात्रा के अनुसार बदलती रही। जहाँ तक भारतीय कृषि के मिथकों का प्रश्न है, हम पृथ्वी देवी का प्रारम्भ हड़प्पा संस्कृति से मानते हैं। उसके गुण एवं कार्यों के पुरातत्वीय संकेतों की व्याख्या के बाद भारतीय पौराणिक कथाओं से तुलना कर सकते हें। मार्कण्डेय पुराण के एक उद्धरण में देवी कहती है।[4]

"देवताओं! मैं सम्पूर्ण विश्व को उन जीवनपोषक वनस्पतियों से सहारा दूँगी जो मूसलाधार वर्षा के समय मेरे अपने शरीर से उत्पन्न होंगे। मैं शाकम्भरी के नाम से पृथ्वी पर सम्मान अर्जित करूँगी।"

इस प्रकार देवी 'पृथ्वी माता"[1] से भिन्न नहीं है जिसके शरीर से जीवन पोषक वनस्पतियाँ उगती हैं। इस सन्दर्भ में हम हड़प्पा से प्राप्त एक मोहर का जिक्र कर सकते हैं । इसका निरीक्षण करने पर पता चलता है कि मोहर में एक नग्न स्त्री का चित्र है, जिसका सिर झुका हुआ है तथा दोनों पैर आगे फैले हुए हैं तथा एक पौधा उसके गर्भ से निकल रहा है। इसे पूर्वोक्त पृथ्वी माता या शाकम्भरी का प्राक्रूप माना जा सकता है। यह देवी स्वयं ही खड़ी है। मानो वह प्राचीन काल की एक स्वतन्त्र देवी के रूप में प्रदर्शन का प्रमाण हो। यद्यपि पुराणकारों ने उसे परम देवी (शाक्तों की सर्वोच्च सत्ता) का ही केवल एक रूप माना है, जिसमें वह पुनः अन्तर्लीन हो जाती है।[2] इसके अलावा भी अनेक मोहरें मिली हैं, जिनमें पेड़-पौधों को देवी के साथ सम्बद्ध किया गया है। ऐसी ही एक मोहर में देवी पीपल के पेड़ की एक द्विधाविभक्त शाखा पर खड़ी है। उसके सामने एक आधा झुका हुआ उपासक दिखाई देता है, जिसके पीछे एक बकरा है जिसका मुँह मनुष्य का हैं। नीचे सात व्यक्ति खड़े हैं, जो छोटा घघरा पहने हुए हैं तथा लम्बी चोटी धारण किए हुए हैं।[4]

---

1. मार्कण्डेयपुराण, सप्तशती, XI/45
2. मार्शल, M.I.C. 9.52
3. सप्तशती - X/45
4. मैके - F.E.M.-I-337-38

ऋग्वेद में भी स्वर्ग और पृथ्वी सार्वभौम माता-पिता के रूप में वर्णित हैं। अथर्ववेद में पृथ्वी माता[4] को समर्पित एक सुन्दर सूक्त प्राप्त होता है। महाभारत[5] में पहली बार पृथ्वी माता का सम्बन्ध विष्णु के साथ मिलता है। कुछ समय के बाद वह विष्णु की पत्नी हो जाती है। ब्रह्मपुराण के एक आख्यान में नरक नामक राक्षस विष्णु और देवी काली के पुत्र के रूप में वर्णित हैं। देवी काली का तादात्म्य पृथ्वी माता से है।[6] इस सन्दर्भ में यह जानना चाहिए कि वराह देव एवं पृथ्वी के सम्मिलन के परिणामस्वरूप एक असुर का जन्म हुआ। इससे ऐसी अवधारणाओं के आधार पर अभारतीय असुर-सम्यता के प्रभाव पर प्रकाश पड़ता है।

प्रारम्भिक चालुक्य राजाओं ने अपने आपको विष्णु का अवतार घोषित किया तथा श्री पृथ्वी वल्लभ[1] पदवी धारण की थी। पृथ्वी (भू, पृथ्वी) वसुमती कहलाती थी। अनेक भूमि दानपत्रों में उसे विष्णु की पत्नी के रूप में वर्णित किया गया था। रामायण में पृथ्वी मेदिनी, माधवी आदि के रूप में चित्रित है। महाभारत में उसका तादात्म्य वैष्णवी के साथ हुआ है।[2]

भारत की वैदिक जनजातियों के लोग पितृदेवों के उपासक थे, किन्तु वे पूर्ववैदिक पृथ्वी माता को अस्वीकार नहीं कर सके। इसलिए वैदिक काल में पृथ्वी देवी का अस्तित्व बरकरार रहा। किन्तु उसकी महत्ता अपने पुरुष साथी पिता आकाश द्यौ की तुलना में घट गई। उसे सभी की माता एवं सकल पदार्थों के सार (उपादान/तत्व) के रूप में सम्बोधित किया गया है। वरदान देने के लिए आकाश के साथ-साथ उसका स्मरण किया गया है। यह अवधारणा एक बिल्कुल ही भिन्न व्याख्या प्रस्तुत करती है। वैदिक धर्म में स्वतंत्र रूप से देवियों का तो गौण स्थान है, किन्तु महान् देवताओं की पत्नियों के रूप में उनकी महत्वपूर्ण भूमिका है। वैदिक देवियाँ तथा

---

1. A.V. XII-1
2. महाभारत - III-141 अध्याय
3. ब्रह्मपुराण - 110/14-16
4. I.C. 71 पृष्ठ 131-33
5. रामायण - II - 1-34, VII, 32/52, 110/14-16.

अदिति और उषस् का परवर्ती धार्मिक इतिहास में कोई खास महत्व नहीं है। वैदिक साहित्य के प्रारम्भिक चरण में पौराणिक देवियों यथा—दुर्गा, काली, अम्बिका, उमा एवं अन्य का उल्लेख नहीं मिलता। भारत में मातृ उपासना का उद्भव जैसा कि आर.पी. चन्दा बल देकर कहते हैं, उन्हीं सामाजिक परिस्थितियों में हुआ, जिन परिस्थितियों में विश्व के अन्य भागों में हुआ। शाक्तों की देवी के सदृश देवप्रमुख की अवधारणा के लिए हमें उन देशों के प्राचीनं (इतिहास में) जाना चाहिए, जहाँ वैदिक आर्यों का दबदबा था।[3] विश्व-उत्पत्ति की शक्ति-योजना में सृष्टि के पहले अकेली अव्यक्त प्रकृति थी। उसने सृष्टि की कामना की और अपने को महान माता के रूप में कल्पित करके अपने शरीर से ब्रह्मा, विष्णु और शिव की सृष्टि की। मोहन जोदड़ो की मातृ देवी की उपासना-पद्धति का उल्लेख करते हुए मार्शल का कथन सच ही है कि—

प्रारम्भिक मातृदेवी उपासना-पद्धति के परवर्ती शाक्त चरण में देवी का रूपान्तरण शाश्वत अस्तित्त्ववती, सर्वशक्तिमती देवी सिद्धान्त में हो जाता है जो कि प्रकृति या शक्ति है। पुरुष के साथ सम्बद्ध होकर वह विश्व की माता और देवताओं की सर्जिका-जगदम्बा या जगत्माता हो जाती है। अपने उच्चतमरूप में वह शिव की पत्नी महादेवी है। यहाँ तक कि उसे कभी-कभी शिव की सर्जिका भी कहा जाता है।[1]

महाकाव्य-युग में शक्तिवाद की महत्ता और बढ़ गई, जबकि वैदिक देव पृष्ठ भूमि में चले गए। महाभारत में अदिति को आदित्यों की माता के रूप में प्रतिष्ठित किया गया है।[2] यहाँ वह ह्री, श्री आदि देवियों की सूची में सर्वप्रमुख है। वह वसुओं और रुद्रों की भी माँ है।[3] हरिवंश में उसका समीकरण दुर्गा और पृथ्वी के साथ किया गया है।[4] देवताओं के लिए वह

---

1. I.A.R.I. 57
2. एन.एन. भट्टाचार्य - द इण्डियन मदर गोडेसेज - पृष्ठ - 28-29
3. महाभारत - I.65, II, III - 134.19.
4. वही - III-14/14
5. हरिवंश, अध्याय - LV.III

देवी अदिति है, जबकि किसानों के लिए वह सीता तथा अन्य जीवित प्राणियों के लिए पृथ्वी है। महाकाव्यों में उत्तर वैदिक देवियों ने काफी महत्ता हासिल कर ली थी जबकि वैदिक देवियाँ यथा–उषस्, अदिति, भू आदि उतनी प्रसिद्ध नहीं रह गयीं एवं उनकी स्थिति देव-परिवार में गौण हो गई। उनमें से अधिकांश का सम्बन्ध विष्णु या शिव से हो गया। वैष्णवी देवियों में श्री लक्ष्मी, वैष्णवी आदि ने भारत के परवर्ती (उत्तरकालीन) धार्मिक इतिहास में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी। देवी 'श्री' के सम्बन्ध में कहा जाता है कि वह समुद्र से उद्भूत हुई है और वह सौभाग्य का मानवीय रूप है।[5] भौतिक समृद्धि की वही उपादान (सार तत्व) है तथा उस रूप में वह कुबेर देवता से सम्बद्ध है। यद्यपि कभी-कभी वह भिन्न देवी के रूप में व्यवहृत होती है, किन्तु सामान्यतया उसका तादात्म्य लक्ष्मी से है, जो एक ऐतिहासिक सत्य है। वह विष्णु की पत्नी है तथा इन्द्र एवं कुबेर से भी सम्बन्धित है। महाभारत में काली के सन्दर्भ में उसका प्रतिपक्षी अलक्ष्मी भी दृष्टिगत होती है, जो कि सभी बुराइयों की प्रमुख देवी मानी गई है।[6]

दोनों ऐतिहासिक महाकाव्यों में वाक् देवी का वर्णन मिलता है, जो किसी भी सम्प्रदाय से सम्बद्ध नहीं है। उसका तादात्म्य सरस्वती से है, जो कि ब्रह्मा की पत्नी है। महाभारत में सरस्वती देवी का वर्णन धाराप्रवाहित नदी एवं वाणी की देवी के रूप में है।[1] प्रायः उसका वर्णन वेदों की माता के रूप में हुआ है तथा उसका तादात्म्य उमा या दुर्गा से है।[2] इन्द्र की पत्नी इन्द्राणी तथा शिव की पत्नी रुद्राणी के द्वारा महत्तर भूमिका निभाना तय है। रुद्राणी की अवधारणा स्पष्टरूप से कालरात्रि और काली की अवधारणा पर आश्रित है। निर्ऋति मृत्यु की देवी है। वह अपने हाथ में पाश लिए प्रकट होती है। एक वृद्धा स्त्री के रूप में वह (रक्तरंजित), रक्तपिपासु काली तथा अल्प वस्त्रधारिणी देवी है।[3]

---

1. महाभारत - IXII.228-2
2. महाभारत - III.94/96
3. महाभारत - III.110, 26, XIII.31-610
4. महाभारत - III.200-83, XII.35-37.
5. महाभारत - X.8.70

अम्बिका, अपर्णा, भद्रकाली, दुर्गा, गौरी, काली, कौशिकी, शाकम्भरी, उमा आदि देवियाँ शैव देवियाँ थीं। किन्तु आगे चलकर उन सभी का तादात्म्य शाक्तों की सर्वोच्च देवी के साथ हो गया। महाभारत में भी देवी या शक्ति के कुछ आदि रूपों की चर्चा हुई है। देवी के विभिन्न नामों में यहाँ कुमारी, मन्दरवासिनी, कालरात्रि, कौशिकी, शाकम्भरी आदि का उल्लेख मिलता है। वह नारायण की प्रिया कहलाती है, यशोदा की पुत्री है, कृपाण और ढ़ाल धारण की हुई है। उसके चार हाथ और चार मुख हैं। महिषासुर की हन्त्री वही है। विंध्य प्रदेश उसका निवास स्थल है तथा मदिरा, मांस और बलिदान उसे अत्यन्त प्रिय हैं।[4]

रामायण[5] और महाभारत[6] में अनेक स्थलों पर उमा का वर्णन मिलता है। वह पार्वती के नाम से भी जानी जाती है। हिमवान् उसका पिता है तथा शिव उसका पति है। उसका नाम प्रारम्भिक मातृ देवी का स्मरण दिलाता है। उसकी अवधारणा मातृ-सिद्धान्त की प्रारम्भिक एवं सार्वजनिक उपासना-पद्धति की तह तक जाती है।

गिरिपुत्री, गिरिजा, गिरिराजपुत्री, शैलराजपुत्री, गिरिशा, नागकन्या आदि उसके विशेष नाम हैं। ये सभी हिमालय क्षेत्र से उसकी सम्बद्धता को दर्शाते हैं। महाभारत में किरातार्जुन प्रसंग में उमा का वर्णन एक किरात स्त्री के रूप में हुआ है।[1] सभापर्व में स्कन्द के जन्म प्रसंग में उमा का वर्णन शिव के साथ हुआ है।[2] वह उत्तरी दिशा (प्रदेशों) की प्रमुख देवी है।[3] अर्जुन के दुर्गा-स्तोत्र में उमा मातृदेवी के रूप में प्रकट होती है। वह शबर, बर्बर, पुलिन्द आदि अवैदिक (अनार्य) लोगों द्वारा पूजी जाती थी।[4] उसे लक्ष्मी से भी अधिक सुन्दर कहा गया है। कहा जाता है कि उमा का अन्य देवताओं के

1. महाभारत - IV.6, VI-23
2. रामायण - I.36.21, III-16.43
3. महाभारत - III.231.49, VII.80.40, IX.45.53
4. महाभारत - III.38-40
5. महाभारत - II.10-11
6. महाभारत - III.271-272
7. महाभारत - VI.23

साथ अच्छा सम्बन्ध नहीं था। कथा में कहा गया है कि पुत्र प्राप्ति के उद्देश्य से जब वह शिव के साथ कामालिंगन की स्थिति में थी, तो देवताओं ने व्यवधान डाला। पुराणों के अनुसार तब क्रोधित होकर उसने देवताओं को शॉप दिया कि उन्हें कभी भी सन्तान प्राप्त नहीं होगी।[5]

महाभारत के दुर्गास्तोत्र[6] में उमा का समीकरण दुर्गा के साथ हैं वह महेश्वरी और महानिद्रा कहलती है। वह कैटभनाशिनी और महिषासृक्प्रिया हैं। उसका तादात्म्य भद्रकाली, कात्यायनी, कौशिकी, सावित्री एवं शाकम्भरी के साथ भी है।[7] उसका निवासस्थान हिमालय, मरुस्थल एवं सम्पूर्ण पृथ्वी पर है, यहाँ तक कि पाताल में भी है। विन्ध्य उसका प्रिय आश्रय स्थल है। उसे मद्य और माँस प्रिय है। उसका नाम दुर्गा है क्योंकि वह लोगों को कठिनाईयों से बचाती है। वह मन्दरवासिनी, कुमारी, काली, चण्डी आदि के नाम से अभिहित की जाती थी। महाभारत के चौथे अध्याय '4/6) में दुर्गा को कृष्ण की बहन तथा नारायण की पत्नी कहा गया है तथा उसका आह्वान इस रूप में किया गया है मानो शिव से उसका कुछ सम्बन्ध ही न हो। जब कि छठे अध्याय (6/23) में उसका तादात्म्य उमा के साथ है। गौरी एवं उमा के साथ दुर्गा का तादात्म्य धीरे-धीरे विकसित होता गया। प्रारम्भ में गौरी वरुण की पत्नी थी किन्तु आगे चलकर वह पर्वत शिखर की महान् देवी हो गई तथा उसका समीकरण उमा के साथ हो गया। तदनन्तर वह दुर्गा के साथ समीकृत हो गई।

हरिवंश[1] के आर्या-स्तव में दुर्गा का आह्वान बहुत से नामों एवं उपाधियों के द्वारा किया गया है। ये नाम हैं-कालरात्रि, निद्रा, कात्यायनी, कौशिकी, विशालाक्षी, महादेवी, कुमारी, चण्डी, दक्षा, शिवा, काली, भयदा, योगिनी, भूतधानी, कुषुमाण्डी आदि, जो आगे चलकर तांत्रिक देवियों के नाम से प्रसिद्ध हुईं। वह शबर आदि अवैदिक एवं अनार्य शिकारी लोगों से

---

1. महाभारत - VII.42-30, II.15-22, IV.1/119
2. महाभारत - IV.6.1, VI.23.1
3. महाभारत - IV.6.10
4. हरिवंश अध्याय - LV.III

सम्बद्ध रही है। हरिवंश पुराण की रचना विष्णु के उपासकों ने की, किन्तु दिन-प्रतिदिन प्रसिद्ध होते जा रहे शक्त्युपासना के बढ़ते प्रभाव से वे बच नहीं सके। इस प्रकार अक्षतयोनि देवी कौशिकी को वैष्णव देवकुल में परिगणित किया गया। वह इन्द्र की बहन, विन्ध्यक्षेत्र उसका निवास स्थान था तथा उसकी साधना पशु-बलि के साथ की जाती थी। उसकी परिकल्पना यशोदा की पुत्री एवं नारायण की पत्नी के रूप में की गई।[2]

महाकाव्य काल में हम देवियों को शिव की अपेक्षा विष्णु से अधिक सम्बद्ध पाते हैं। यहाँ तक कि मार्कण्डेय पुराण के दुर्गा माहात्म्य में वह विष्णु की योगनिद्रा है। ब्रह्मवैवर्त पुराण में वह कृष्ण की प्रेमिका राधा है। अन्य पुराणों में यह कहा गया है कि देवी को यशोदा के गर्भ में स्थानान्तरित किया गया था और इस प्रकार वह कृष्ण की बहन थी। पुरी के मन्दिर में देवी की उपासना बलराम और कृष्ण की बहन के रूप में की जाती है। ऐसा प्रतीत होता है कि यह विकास बहुत बाद का है कि शक्ति की अवधारणा शैव धर्म (दर्शन) से गहन रूप से सम्बद्ध हो गई, तथा देवी का सम्बन्ध केवल शिव के साथ हो गया था, कभी उसकी पत्नी के रूप में और कभी उसकी शक्ति के रूप में।

पुराणों में शक्तिवाद के बारे में अनेकशः उल्लेख मिलता है। इसी साहित्य में देवी का गौरव अपने पूर्णतम रूप में अभिव्यक्त हुआ है। विष्णु की पत्नी के रूप में वैष्णव धर्म में इनके सिद्धान्त की काफी महत्ता है। शैव धर्म (दर्शन) में उसकी कल्पना शिव या रुद्र की पत्नी पार्वती, रुद्राणी आदि के रूप में की गई है। दुर्गा, कात्यायनी महिषमर्दिनी आदि के रूप में उसकी स्वतन्त्र सत्ता है। यहाँ उसका तादात्म्य सर्वोच्च सत्ता ब्रह्म के साथ हो गया है। वह सृजन, पालन एवं जगत् के विकास की स्रोत मानी गई है।

दानवहन्त्री या त्राणकर्त्री देवी के रूप में दुर्गा कई भुजाओं से सज्जित है। यह विशेषता पार्वती, उमा की अवधारणा से पूर्णतया भिन्न है। उमा आत्यंतिक रूप से गृहिणी (साधारण) है—चाहे वह हिमवत् की पुत्री के

1. महाभारत - IX.6
2. हरिवंश अध्याय - LVIII, CLXXVII

रूप में हो, शिव की पत्नी के रूप में हो या कुमारी माँ के रूप में हो। यहाँ यह ध्यान देने योग्य है और रुचिकर भी, कि प्रारम्भिक पुराणों यथा वायुपुराण, ब्रह्माण्डपुराण, मत्स्यपुराण तथा उत्तरवर्तीपुराणों यथा कूर्मपुराण, शिवपुराण, गरुड़पुराण, ब्रह्मपुराण आदि में देवी के विकराल रूपों एवं दानवहन्त्री अवधारणा पर विशेष बल नहीं दिया गया है। किन्तु मार्कण्डेय पुराण, वराहपुराण एवं शाक्तपुराणों में यथा–देवी पुराण आदि में चण्डिका, कौशिकी, काली एवं महाकाली के रूप में उसके विकराल दानवहन्त्री रूप को प्रमुखता प्रदान की गई है। देवी कौशिकी सम्भवतः कुशिक जनजातियों से सम्बद्ध थी, जिसका तादात्म्य आगे चलकर चण्डिका से हो जाता हैं। मार्कण्डेय पुराण में कहा गया है कि कौशिकी पार्वती के अंगों से उद्भूत हुई। बाद में उसका रंग काला हो गया और हिमालय क्षेत्र में रहने वाली कालिका के रूप में जानी जाने लगी। दूसरे प्रसंग में कहा गया है कि काली का प्रादुर्भाव चण्डिका के ललाट से हुआ। उद्देश्य था चण्ड एवं मुण्ड नामक दानवों का संहार करना। इस रूप में उसे चामुण्डा कहा गया। यद्यपि व्याकरण के दृष्टिकोण से चामुण्डा शब्द की व्युत्पत्ति चण्ड एवं मुण्ड शब्दों से नहीं हो सकती।

इस प्रकार चामुण्डा एवं काली भिन्न-भिन्न देवियाँ हैं। आज तक विद्यमान जनजातीय देवियों में से कौशिकी, चण्डिका, काली आदि देवियों को शाक्त देवकुल में स्पष्टरूप से अंगीकार कर लिया गया था। मत्स्यपुराण में[2] काली कलिङ्ग प्रदेश की, चण्डिका मकरन्दक की तथा विंध्यवासिनी विन्ध्यप्रदेश की देवी कही गई है। यहाँ उसकी अभिव्यक्ति सर्वोच्च देवी के रूप में हुई है। विष्णुपुराण[3] में देवी के प्रिय मद्य एवं माँस का विशेष उल्लेख है। अपर्णा का अर्थ है–वह देवी जिसका वस्त्र पत्तों का भी नहीं है। उसकी उपासना मौलिक रूप से बृहत्संहिता में (प्रारम्भिक रूप में) नग्न देवी के रूप में एवं शबरों की देवी के रूप में की जाती रही है।

---

1. देवी माहात्म्य, अ. - I, XIII
2. एन.एन. भट्टाचार्य- द इण्डियन मदर गोडेसेज पृष्ठ - 59
3. विष्णु पुराण - V.1/84

बौद्धधर्म में भी हमें पर्णशाबरी नामक एक देवी मिलती है।

देवी परक अनुश्रुतियों में मातृकाओं या दिव्य माताओं की महत्त्वपूर्ण भूमिका हैं। महाभारत में हमें बहुत-सी मातृकाएँ स्कन्द से सम्बन्धित देखने को मिलती हैं। पुराणों में उनकी प्रतिष्ठा देवी कौशिकी या चण्डिका के अवतारों के रूप में हुई है। पुराणों में मातृकाओं के उद्भव के अनेक वृतान्त हैं। उन सबों मे सबसे प्रसिद्ध यह है कि जब शिव ने अन्धक दैत्य के हृदय का वेधन किया तो दैत्य के खून के प्रत्येक बूंद से नया दैत्य प्रकट हुआ। यह देखकर शिव अत्यन्त क्रुद्ध हो गए और उनके शरीर से देवी योगेश्वरी प्रकट हुई। उसी समय विष्णु, ब्रह्मा, कुमार, इन्द्र, महेश्वर, यम एवं वराह के शरीर से क्रमशः वैष्णवी, ब्रह्माणी, कुमारी, इन्द्राणी, महेश्वरी, चामुण्डा एवं वाराही प्रकट हुई। दूसरे वृत्तान्त में रक्तबीज नामक एक असुर देवी के साथ युद्ध कर रहा था। तब देवी के मुँह से भयानक चीत्कार निकला। उस समय उसके मुँह से ब्रह्माणी, महेश्वरी, वैष्णवी, कुमारी वाराही एवं नारसिंही प्रकट हुई।[1]

वराहपुराण[2] का कहना है कि योगेश्वरी काम की देवी है, महेश्वरी क्रोध की, वैष्णवी लोभ की, कुमारी आसक्ति की, ब्रह्माणी अहंकार की ऐन्द्री ईर्ष्या की, चामुण्डा भ्रष्टता (चरित्रहीनता) की तथा वाराही असूया (मत्सर) की प्रतीक है।

देवी भागवत पुराण[3] कहता है कि शक्ति की कल्पना आद्याशक्ति के रूप में की गई है। वह ब्रह्मा में सृजनात्मक सिद्धान्त के रूप में, विष्णु में पोषक शक्ति के रूप में, तथा शिव में विध्वंसक शक्ति के रूप में निवास करती है। यह आद्याशक्ति सर्वत्र व्याप्त है तथा इस प्रतिभासिक जगत की समस्त वस्तुओं का विध्वंस भी करती है। देवी मूल रूप में अव्यक्त है तथा उसके तीन रूप महालक्ष्मी, महाकाली और महासरस्वती प्रकृति के तीन गुणों सत्त्व, रजस् और तमस् को प्रकट करते हैं।

---

1. सप्तशती - VIII.39-50
2. वराह पुराण - XVII.33-37
3. देवी भागवत पुराण - I.1.1

प्रारम्भिक पुराणों में वर्णित देवी के वीरता के कारनामों की विस्तृत व्याख्या शाक्त पुराणों में प्राप्त होती है। देवी पुराण[1] में वह विजय की देवी है तथा जया और विजया, अपराजिता और जयावती आदि नामों के रूप में जानी जाती है। यहाँ वह घोर, सुबल, रूरू आदि दैत्यों की वध से सम्बन्धित है। कालिका पुराण यद्यपि किसी युद्ध की चर्चा नहीं करता, तथापि इसमें महिषासुर एवं अन्य दानवों के वध का उल्लेख है। पूर्वोक्त पुराणों में स्थानीय देवियों का चित्रण भी प्राप्त होता है, जिसका आगे चलकर शाक्तों की सर्वोच्च देवी एवं उनके पवित्र आश्रय स्थान से तादात्म्य स्थापित हो गया था।

अपने विकसित रूप में शाक्त धर्म पूर्णतः तंत्रवाद से एकात्मकता स्थापित कर लेता है। इस सन्दर्भ में यह उल्लेखनीय है कि तांत्रिक विचारधारा ने गम्भीर रूप से विभिन्न धार्मिक सम्प्रदायों को प्रभावित किया तथा मौलिक रूप से उनके विचारों एवं व्यवहारों को परिवर्तित भी किया। किन्तु इन सब तन्त्रों की प्रतिष्ठा शक्तिवाद के आधार के रूप में हैं। अपने नवीनतम रूप में शक्तिवाद अपरिहार्य रूप से मध्य युग में विकसित हुआ है। तंत्रों का विशेष जौर मन्त्र, बीज, मुद्रा, मन्त्र एवं न्यास पर रहा है। शक्ति उपासक का लक्ष्य ब्रह्माण्ड को अपने में अभिव्यक्त करना है तथा देवी से एकात्म स्थापित करना हैं। तन्त्र का तर्क बहुत सरल है। सामाजिक धरातल पर तन्त्र या शक्तिवाद सभी प्रकार के निषेधों से मुक्त है। सभी पुराणों में स्त्रियों की प्रतिष्ठा प्रकृति या शक्ति की अभिव्यक्ति अवतार के रूप में की गई है। उसका भक्ति के साथ समाज में सम्मान आदर किया गया है।

शक्तिवाद ने प्राचीन काल से ही भारतीय कला को पर्याप्त रूप से प्रभावित किया है। प्रथम शताब्दी से लेकर आज तक हमें देवी की असंख्य प्रतिमाएँ पूरे भारत में देखने को मिलती हैं। देवी महिषासुर मर्दिनी की प्रारम्भिक प्रतिमा राजस्थान में नागर से प्राप्त हुई थी, जो आजकल अम्बर संग्रहालय में सुरक्षित हैं। इसका काल प्रथम शताब्दी ई० है। कुषाणकाल

1. देवी पुराण अ. – 9

की छः मूर्तियाँ मथुरा संग्रहालय में सुरक्षित हैं, जो देवी के प्राचीनतम रूप को प्रकट करती है। गुप्तकाल एवं गुप्तोप्तर काल में हमें बहुत बड़ी संख्या में कला के सुन्दर नमूने देवी के रूपों में प्राप्त होते हैं। मानो देवी माहात्म्य में वर्णित आख्यानों एवं रूपों की कलात्मक अभिव्यक्ति कर रहे हैं।

कला के उन नमूनों में कलाकार एवं जन समूह–दोनों की भक्ति एवं समर्पण का चित्रण हुआ है। सम सामयिक साहित्य में भी देवी की अनुकम्पा का प्राचुर्य दिखाई देता है। यहाँ तक कि भारत देश को भारत माता कहा जाता है। शक्तिवाद के बिना आधुनिक हिन्दू धर्म की कल्पना तक नहीं की जा सकती। इसके सहज, स्वाभाविक विचारों एवं सिद्धान्तों ने मनुष्य के मस्तिष्क एवं उसके हृद्गत विचारों को गहन रूप से प्रभावित किया है।

अध्याय 2

उपनिषदों में शक्ति तत्त्व

उत्तरवैदिक-साहित्य में, विशेषरूप से उपनिषदों में शक्तिवाद (शक्तिमत) का दार्शनिक विवेचन किया गया है। वाजसनेयी-संहिता[1] में देवी अम्बिका को रुद्र देवता की बहन के रूप में सम्बोधित किया गया है। एवं यज्ञ में आने तथा रुद्र के साथ अपना भाग लेने के लिए उसकी स्तुति की गई है। त्र्यम्बक-होम नामक यज्ञ में चौराहे पर पलाश के पत्तों में बलि-कर्म (नैवेद्य, आहुति) आदि के अर्पण का वर्णन हैं। परवर्ती काल में इस तरह का भेंट (अर्पण) विशेष रूप से मातृ-देवियों को दिया जाने लगा था।[2] वाजसनेयी-संहिता[3] में उल्लेख है–"हे रुद्र। यह तेरा भाग है, विनयपूर्वक अपनी बहन अम्बिका के साथ आकर इसे स्वीकार करो।" उपरोक्त सन्दर्भ का वर्णन शतपथ ब्राह्मण[4] में इस प्रकार है– वास्तव में अम्बिका रुद्र की बहन का नाम है तथा यह भेंट एक मातृदेवी के साथ के साथ पूजा उसे (रुद्र) समर्पित हैं ।

अम्बिका का उल्लेख तैत्तिरीय संहिता में भी मिलता है। तैत्तिरीय ब्राह्मण और शतपथ ब्राह्मण [7] में उसका चित्रण शरद ऋतु के रूप मे मिलता है। तैत्तिरीय आरण्यक में रुद्र को अम्बिकापति[8] कहा गया है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि अम्बिका शरदऋतु की देवी है तथा रुद्र से

1. वाजसनेयी संहिता - III/53
2. मृच्छकटिकम् - I/15
3. वाजसनेयी संहिता - III/53
4. शतपथ ब्राह्मण - 2,6,3,4.
5. तैत्तिरीय संहिता - 1/8/614
6. तैतिरीय ब्राह्मण - 1/6/10
7. शतपथ ब्राह्मण - 1/6/2/9/
8. तैत्तिरीय आरण्यक - X/11

सम्बन्धित है। कीथ के अनुसार अम्बिका का नामकरण त्र्यम्बक से हुआ है, जो ऋग्वेद मे वर्णित रुद्र का ही एक नाम है।

पाश्चात्यविद्वान् अर्बमैन महोदय 'त्र्यम्बक' नाम की व्याख्या एक ऐसे पुरुष के रूप में करता है जिसकी तीन माँ रही हो। इस प्रकार उसने रुद्र को मध्यकालीन भारत में मातृदेवी की उपासना-पद्धति के साथ सम्बद्ध करने का प्रयास किया है[1]। यद्यपि कीथ ने इस मत का खण्डन किया है फिर भी ऐसा प्रतीत होता है कि उपरोक्त मत में शाक्त धर्म के इतिहास को समझने में कुछ ठोस दृष्टिकोण अपनाये गये है।

उमा का आविर्भाव तैत्तिरीय-आरण्यक में होता है एवं रूद्र की स्तुति उमापति[2] के रूप में की गयी है। केनोपनिषद्[3] में वह उमा हैमवती है, जहाँ उसके आविर्भाव का उपाख्यान इन्द्र एवं अन्य देवताओ से भी पहले से है। यहाँ उसके द्वारा (उमा हैमवती) उन देवताओं को ब्रह्म का दैवी ज्ञान करा देने का वर्णन बहुत सुन्दर ढंग से किया गया है। वह उमा हैमवती है। हैमवती को हिमवत् अर्थात हिमालय की कन्या कहा जाता है। इस लावण्यमयी यौवनसम्पन्न उमा देवी के प्रारम्भिक इतिहास के बारे मे हम कुछ नहीं जानते। किन्तु देवताओं की शिक्षिका के रूप में उसका उदय एकाएक नहीं हुआ होगा। यह निश्चित रूप से अनुमान किया जा सकता है कि गिरिप्रसूता इस देवी की उपासना निश्चित रूप से इस काल से बहुत पहले प्रचलित हो गयी होगी।[4]

उपनिषदो में हमें विस्तृतरूप में शक्तिसम्प्रदाय का वर्णन मिलता है। अन्य उपनिषदों की अपेक्षा श्वेताश्वतरोपनिषद में विश्व उत्पत्ति के मौलिक

---

1. ऋग्वेद - VII/59/12.
   ए.वी. कीथ - रीलिजन एण्ड फिलोसोफी ऑफ द वेदाज - Vol 3 पृष्ठ 144
2. अर्बमैन रुद्र, पृष्ठ - 296 कीथ के द्वारा उद्धरित O.P. Cit पृष्ठ 149
3. तैत्तिरीय आरण्यक - X 18
4. केनोपनिष्द् - III.25
5. इण्डियन कल्चर, अक्टूबर-दिसम्बर, Vol VIII,Not-2-3, पृष्ठ 169

सिद्धान्त की स्पष्ट विवेचना की गयी है। जगत की उत्पत्ति के जितने भी कारण कहे जातें है, उसमें से जिसकी सर्वप्रथम उत्पत्ति हुई सामान्यतया उसे ही अत्यावश्यक कारण माना जाता है। सबसे पहले जो तत्त्व उत्पन्न हुआ उसे ही परम कारण निर्णीत किया जाता है, जिससे विश्व का विकास हुआ होगा। श्वेताश्वतर उपनिषद् में इसी तरह के विचार-मंथन से समस्या के समुचित समाधान के रूप में काल, प्रकृति(स्वभाव), दैव (नियति) एंव संयोग[1] (यदृच्छा)के सिद्धान्त को प्रस्तुत किया जाता है। किन्तु इनमे से कोई भी जिज्ञासु के व्युत्पन्न-मस्तिष्क को संतुष्ट नही कर पाता। अन्तिम सत्य (निरपेक्षसत्य) की प्राप्ति के लिए भक्तिपूर्ण ध्यान के अतिरिक्त ऋषि के समक्ष कोई विकल्पशेष नहीं रहता। सहसा उनके समक्ष सत्य प्रकाशित होता है एंव वे अपने मन में स्पष्ट रूप से देखते हैं कि सभी कारणों के मूल में शक्ति ही अन्तर्निहित तत्त्व हैं।[2]

ते ध्यानयोगानुगता अपश्यन् देवात्मशक्तिं स्वगुणैनिर्गूढाम्।

यह सभी कारणों का अन्तिम कारण है। शक्ति पवित्र एवं दैवी सत्ता है तथा सर्वोच्च सत्ता से समीकृत है। आगे कहा गया है कि ब्रह्म कि सर्वोच्च शक्ति अनेक रूपों तथा आकार वाली है। ज्ञान और क्रिया की वह शक्ति केवल तभी स्वाभाविक होती है, जब वह ब्रह्म[3] के साथ संयुक्त हो। इसी उपनिषत् में (श्वेताश्वतर) आगे चलकर एक अतिमहत्वपूर्ण विन्दु पर प्रकाश डाला गया है, जिसे हम शाक्त-तंत्रों में भलीभाँती विकसित पाते है। अर्थात एक ही ईश्वर शक्ति के सान्निध्य के प्रभाव या सामर्थ्य से विभिन्न रूपों को अपनाता है[4]।

उत्तरवैदिक सहित्य में उमा हैमवती और अम्बिका-इन दोनो देवियो के सम्बन्ध में जो सबसे दिलचस्प और महत्त्वपूर्ण बात है-वह यह कि वे दोनों रूद्र के साथी के रूप मे चित्रित हैं। उमा हैमवती भी कहलाती है अर्थात वह या तो हिमालय की पुत्री है या फिर हिमालय ही उनका निवास

1. श्वेताश्वतरोपनिषद् - 1/1, कालः स्वभावो नियतिर्यदृच्छा।
2. वही
3. श्वेताश्वतरोपनिषद्-परास्य शक्तिर्बहुधा च गीयते स्वाभाविकी ज्ञानबलक्रिया च।
4. वही - य एको वर्णो बहुधा शक्तियोगाद्वर्णाननेकान्निहितार्थो दधाति।

स्थान है। जैसा कि वेदों में शिव के बारे में कहा जाता है कि वे पर्वत पर निवास करते हैं (गिरीश, गिरोशन्त एवं गिरित्र)। अतएव शिव[3] की पत्नी होने के कारण इस देवी को पार्वती कहा जाता है।

इस प्रकार हम पाते है कि श्वेताश्वतरोपनिषद् में शक्ति का औपनिषदिक चिन्तन पूर्णरूप से विकसित हुआ है। अन्य उपनिषदो का निरपेक्ष ब्रह्म इस ईश्वरवादी उपनिषद में व्यक्तित्त्वपूर्ण ईश्वर हो गया है, जो अपनी शक्ति से संयुक्त है। वह शक्ति सर्वथा अलग सिद्धान्त नहीं है, प्रत्युत् वह उसी की है तथा उसी में रहती है[4]। यह शक्ति माया[5] भी कहलाती है, जबकि शिव को मायिन् कहा जाता है। वह ब्रह्म की शक्ति के नाम से भी अभिहित है, उसी प्रकार से अन्य सभी प्रमुख उपनिषद ब्रह्म के, सक्रिय एवं सगुण स्वरूप पर जोर देने के पक्ष में है, न कि ब्रह्म के शक्ति-शून्य या निष्क्रिय स्वरूप पर।[6]

श्रोतसूत्रों एवं गृह्य-सूत्रों पर दृष्टिपात करने पर हम पाते हैं कि सांख्यायन[1] श्रोतसूत्र एंव गृह्यसूत्र में भद्रकाली का वर्णन है। बौधायन धर्म सूत्र एवं मनु-संहिता में दुर्गा तथा ज्येष्ठा का न केवल वर्णन हैं, अपितु उनको अर्पित किये गये भेंटो (बलि) का भी उल्लेख है। मुण्डकोपनिषद् में कई देवियों

---

1. एस. के. दास - शक्ति और डिवाइन पावर - पृष्ठ 57
2. श्वेताश्वतरोपनिषद् - देवात्मशक्तिं स्वगुणैनिर्गूढाम् - 1/3
3. वही - IV/10
4. एस. के. दास - शक्ति और डिवाइन पावर- पृष्ठ - 5.5
   श्वेताश्वतरोपनिषद् - 'परास्य शक्ति विविधैव श्रूयते।' - VI/8
5. सांख्यायन सूत्र-गृह्यसूत्र - II/IV/20/14/1खामनु III/89
   भवान्यै स्वाहा शर्वाण्यै स्वाहा रुद्राण्यै।
   स्वाहैशान्यै स्वाहाम्नायै स्वाहेति। सांख्यायन सूत्र - IV/20
   (a) बौधायन धर्म सूत्र - II/5/6
   (b) बौधायन गृह्य सूत्र - 1/2/7/1
   (c) बोधायन गृह्य सूत्र - III/3.2
   (d) बोधायन गृह्य सूत्र - III/3.9
6. मुण्डकोपनिषद् - 1/2/4.

के नाम मिलते हैं जिसमें से कुछ तो स्वतंत्र देवियों के रूप में काफी परिचित जान पड़ती है।[1] काली, कराली, मनोजवा, सुलोहिता, स्फुलिङ्गिनी एवं विश्वरूपा–ये सारी संज्ञाएँ मुण्डकोपनिषद् में अग्नि की सप्त-ज्योतियों को दी गई है। दुर्गा, वैरोचनी, कात्यायनी एवं कन्याकुमारी का उल्लेख तैत्तिरीय-आरण्यक[2] में हुआ है। 'दुर्गी, जिसकी व्याख्या सायण ने भी किया है, दुर्गा को ही कहा जाता है। सप्तशती में वर्णित दुर्गा का एक अर्थ काठिन्य भी है। इस प्रकार उत्तरवैदिक साहित्य में शक्ति या दुर्गा की अवधारणा पूर्णरूप से विकसित दीख पड़ती है।

कितने ही उपनिषद् जो शाक्तोपनिषद् के नाम से अभिहित हैं, न केवल शक्ति की उपासना के वर्ण्य-विषय को समेटे हुए है, बल्कि उसे गोरवान्वित भी करते हैं। यद्यपि ये उपनिषद् असंदिग्धरूप से भारतीय इतिहास[3] में बहुत बाद के हैं। इन उपनिषदों में शक्ति सम्प्रदाय के दार्शनिक आधार पर विवेचन हुआ है तथा ब्रह्म या ईश्वर के रूप में शक्ति को ही केन्द्रीय तत्त्व माना गया है। ये उपनिषद् आदर्शवादी एकदेववाद (एकत्ववाद) या ब्रह्मवाद का समर्थन करते हैं।[4]

ब्रह्म[5] के सृजनात्मक शक्ति के सक्रिय स्वरूप पर जोर दिया गया है। शक्ति से यहाँ अभिप्राय स्वयं ब्रह्म से है, न कि ब्रह्म से सम्बन्ध रखने वाली कोई अलग सत्ता से।[6] शाक्त-तन्त्रों के ही समान शाक्त-उपनिषदों में–शक्ति-तत्त्व का प्रधान तत्त्व के रूप में स्वीकार किया गया है।[7]

---

1. तैत्तिरीय आरण्यक - X/1/7
2. जे. एन. फरक्यूहर - एन आउटलाइन ऑफ द रीलिजियस लिटरेचर ऑफ इण्डिया पृष्ठ - 21.
3. जे.एन. सिन्हा - ए हिस्ट्री ऑफ इण्डियन फिलॉसफी - Vol. 1,पृष्ठ - 87
4. वही।
5. दुर्गा-सप्तशती -IV/10,16
6. देवी उपनिषद् - 2, सामोपनिषद्। सरस्वती रहस्योपनिषद् 10 ' अद्वैता ब्रह्मण:शक्ति ब्रह्मत्वं मे सदा नित्यं सच्चिदानन्दरूपत:।
7. लिंग पुराण - II/ 11/1-34
   स्कन्द पुराण - 7/3/54-83
   तंत्र प्रकाश - 2/7 सेयं पराशक्तिः परमेश्वरादभिन्ना।

शैव उपनिषद् के समान शाक्त उपनिषदों ने भी शक्ति[1] को शिव की सृजनात्मक शक्ति के रूप में स्वीकार किया है, जिसके बिना शिव विश्व की सृष्टि नहीं कर सकता। यही (शक्ति) विश्व की जननी है।[2] यह प्रकृति पुरुष या व्यक्तिगत आत्मा तथा विश्व की कर्त्री है।[3] यही शक्ति प्रकृति[4] या माया[5] के नाम से भी जानी जाती है।

इन शाक्त-उपनिषदों के अध्ययन से एक महत्त्वपूर्ण तथ्य का पता चलता है। वह यह कि इनमें शक्ति की अवतार या किसी विशिष्ट मातृदेवी के वर्णन में उनके सौन्दर्य और भयानक स्वरूप का अद्भुत समन्वय मिलता है। उदाहरण के तौर पर सुमुखी उपनिषद[6] से पता चलता है कि वैसी शक्तिदेवी की उपासना करनी चाहिए, जो सोलह वर्ष की बाला एवं परमसुन्दरी हो। साथ ही जो उस समय किसी शव पर विराजमान हों तथा जिसके वस्त्र एवं आभूषण रक्तरंजित हों।

बहवृचोपनिषद् में निम्नलिखित विभिन्न देवियों का वर्णन मिलता है[7]– महात्रिपुरासुन्दरी, बालाम्बिका, बगला, मातङ्गी, स्वयंवर कल्याणी, भुवनेश्वरी, शुकश्यामला, चामुण्डा चान्द्रा, वाराही, तिरस्करिणी, लघुश्यामला, अश्वारुढा, धूमावती, सावित्री, सरस्वती एवं ब्रह्माण्डकाली। हो सकता है–ऐसे कई उपनिषद् हों, जिनमें पूर्ववर्णित देवियों में से प्रत्येक का सविस्तार उल्लेख शक्ति के विभिन्न पहलुओं पर जोर देते हुए किया गया हो। किन्तु हम

---

1. त्रिपुरा तापिनी उपनिषद् - I/6
2. त्रिपुरा उपनिषद् 13-विश्वजन्या, V/14 शक्तिरजरा विश्वयोनिः। सौभाग्यलक्ष्मी उपनिषद - V/4 सकलभुवनमाता।
3. देवी उपनिषद् 2] मत्तः प्रकृतिपुरुषात्मकं जगत्
4. देवी उपनिषद् 8 नमो देव्यै महादेव्यै शिवायै सततं नमः
5. सरस्वती उपनिषद् - V/49-50 सत्त्वप्रधाना प्रकृतिर्मायेति प्रतिपाद्येत।
6. सुमुखी उपनिषद्–
   अथैनामावाहयागि अनवद्यां शवाधिरूढां रक्तवस्त्रालंकारयुक्तां।
   रक्तपीठोपविष्टां गुञ्जाहारविभूषितहृदयां षोडशसमा-समाकारां
   युवतीं पीनोन्नतघनस्तनीं-चाण्डालिनीं महापिशाचनीं देवीमावाह्य।
7. बहवृचोपनिषद् मंत्र - 8

पाते हैं कि वे उपनिषद[1] जिनमें वे सभी देवियाँ वर्णित हैं, महात्रिपुरासुन्दरी की व्याख्या करती है एवं जिनमें अन्य के साथ सम्बन्ध बताते हुए उनको (महात्रिपुरासुन्दरी) परिभाषित किया गया है। सौभाग्यलक्ष्मी उपनिषद् में देवी महालक्ष्मी[2] की तान्त्रिक-यौगिक व्याख्या मिलती है। इस देवी की उपासना से निश्चित होता है, जिसे श्रीविद्या[3] कहा जाता है। त्रिपुरातापिनी उपनिषद् का वर्ण्य विषय देवी दुर्गा है। गुह्यकाल्योपनिषद् में देवी महादेवी[4] के अखिल-वैश्विक (ब्रह्मण्डीय) ध्यान का प्रभावशाली वर्णन किया गया है। बह्वृचोपनिषद्, सरस्वती रहस्योपनिषद् तथा देवी उपनिषद में देवी के अन्यविलक्षण गुणों की व्याख्या की गई है।

शाक्त-उपनिषदों की एक और महत्त्वपूर्ण विशेषता यह है कि तन्त्र के पारिभाषिक शब्दों के विभिन्न सन्दर्भों से वे भरे पड़े हैं। इनमें से कुछ उपनिषद् तो चरित्र के दृष्टिकोण से पूर्णरूपेण तान्त्रिक ही हैं। इनमें तन्त्र के सांकेतिक पदों का वर्णन किया गया है। उदाहरणस्वरूप-बिन्दु, नाद, रजस्, बीज, स्थान शक्ति, मन्त्र, यन्त्र, चक्र,[5] इत्यादि। यहाँ हम देख सकते हैं कि तान्त्रिक शब्दावलियों पर वेदान्त का काफी प्रभाव पड़ा है। तान्त्रिक पदों एवं संकेतों[6] के दार्शनिक चिन्तन को रहस्यात्मक ढंग से अभिव्यक्त करने के लिए काफी गम्भीर प्रयास किया गया था।

यहाँ ध्यान देने योग्य बात यह है कि समाज के विकास क्रम में दार्शनिक विचारों के विकास के साथ-साथ उपासना का प्रारम्भिक रूप भी पता चलता है। अतः यह स्वाभाविक ही है कि कुछ सार्वजनिक पहचान के लिए लोगों ने उपासना के अपने विभिन्न प्रकारों को उनके क्रम में सुरक्षित रखने के लिए दार्शनिक जामा पहनाने की कोशिश करी हो। इससे

1. नियो उपनिषद्स पृष्ठ - 41
2. सौभाग्यलक्ष्मी उप. - 1/12
3. गुह्यकाली उ., मंत्र - 42-76
4. नियो उप. पृष्ठ - 65
5. त्रिपुरा उप. मंत्र - 14
6. वही, मंत्र - 2.

स्पष्ट हो जाता है कि कैसे तन्त्र ने अपने संकेतों को दार्शनिक महत्त्व प्रदान करने में वेदान्त की सहभागिता प्राप्त की होगी।

त्रिपुरा उपनिषद् एवं त्रिपुरातापिनी उपनिषद्[1], त्रिपुरा-सुन्दरी की महिमा का गुणगान करते हैं। त्रिपुरा-सुन्दरी शक्ति का पहला मूर्तरूप है जिससे विश्व की उत्पत्ति हुई। त्रिपुरा तापिनी उपनिषद् में हमें त्रिपुरासुन्दरी या श्रीविद्या[2] का विस्तृत वर्णन मिलता है। उसमें तन्त्र के कार्य की सभी समानताएँ या सादृश्यताएँ वर्तमान हैं। यथा-चक्र, कामकला[3], मुद्रा और कौल।[4] इसके अतिरिक्त दो अध्याय या मन्त्रों की व्याख्या पूर्णरूप से शक्तिमत के दृष्टिकोण से की गई है। इससे शक्ति उपासना-पद्धति का वैदिक-चरित्र स्पष्ट होता है। शक्तिवाद के परिप्रेक्ष्य में गायत्री के विवरण से इस उपनिषद में स्पष्ट पता चलता है कि कैसे शक्ति तत्व और ब्रह्म विद्या एक-दूसरे से गूँथे हुए हैं।

त्रिपुरा-उपनिषद् के प्रथम छः मन्त्रों या अध्याय में संक्षेप में शाक्त मत के दार्शनिक आधार पर वर्णन है जबकि अन्तिम दस मन्त्र या अध्याय में देवी के प्रति की गई उपासना के विभिन्न प्रकारों का सारांश है। त्रिपुरा तापिनी उपनिषद् में पाँच उपनिषद् हैं। प्रथम में देवी के ध्यान का वर्णन है।[5] यहाँ देवी के नाम 'त्रिपुरा त्रिकूटा[6], माया, वैष्णवी तथा महालक्ष्मी के रूप में वर्णित है। दूसरे उपनिषद् में 'त्रिपुरम के व्यक्तित्व' पर लघु विवरण के साथ विभिन्न चक्रों की संरचना की व्याख्या की गई है।

तीसरे उपनिषद् में उपासना पद्धतियों तथा मुद्राओं की विस्तार से व्याख्या की गई है। चौथा उपनिषद् त्र्यम्बक के सम्मान में त्रिपुराषट्क से आरम्भ होता है। अन्तिम उपनिषद् का अभिप्राय त्रिपुरा उपनिषद् के

---

1. त्रिपुरा-तापिनी उपनिषद् 1/1 त्रिपुरामिधा भगवतीत्येवमादिशक्त्या।
2. त्रिपुरा-तापिनी उपनिषद् - 1/5
3. वही, 1/6
4. वही II/3 कौलं वामं श्रेष्ठसोमं
5. वही I/16-25
6. वही 1/39.

क्रिया-काण्ड खण्ड का विवरण देना है, जहाँ कितने ही पीठों का वर्णन मिलता है। जो व्यक्ति देवी को सिद्ध करता है अर्थात् जिसे देवी का साक्षात्कार होता है, वह निरपेक्ष परम आनन्द को उपलब्ध करता है।[1]

देवी उपनिषद् या अथर्वशीर्षोपनिषद्-जैसी महत्त्वपूर्ण उपनिषद्-अपने विषय वस्तु के दृष्टिकोण से त्रिपुरा-तापिनी उपनिषद् के समान ही है। इसमें दुर्गा तथा इसी प्रकार अन्यरूपों में शक्ति का मानवीकरण किया गया है। यहाँ शक्ति के मानवीकरण के कुछ रूप और भी वर्णित हैं।[2] यथा-दुर्गा, महालक्ष्मी, सरस्वती एवं वैष्णवी। यहाँ शक्ति ब्रह्मरूपिणी के रूप में चित्रित है, न कि द्रव्य की केवल गतिविधि के रूप में। जब देवताओं ने उसका परिचय जानना चाहा तो सर्वोच्च देवी ने कहा-"मैं यह जगत्[3] हूँ। इस उक्ति का बहुत अधिक महत्व हैं क्योंकि इसका अभिप्राय यह सूचित करना है कि ऐसा कुछ भी नहीं है जो शक्ति से रहित हो। शक्तियाँ[4] सब उसी का प्रकाशित रूप है, व्यक्तरूप है। वह महाविद्या और विश्वरूपिणी[5] के नाम से भी जानी जाती है। वह दुर्गा है।[6] क्योंकि वह कठिनाइयों से, विपत्तियों से हमारी रक्षा करती है। कहा जाता है कि हृदय कमल या हृदयस्थित कमल में उसका निवास है तथा प्रातःकालीन सूर्य[7] या बाल सूर्य के समान दैदीप्यमान है। वह दयालु है, अपने भक्तों को जागतिक अस्तित्त्व के भय से मुक्त करती है। सज्जनता, सहानुभूति की तो वह अवतार ही है।[8]

---

1. त्रिपुरातापिनी उप. - II/34 ततो देवी प्रीता भवति स्वात्मानं दर्शयति। स ब्रह्मपश्यति स सर्वं पश्यति सोऽमृतत्त्वं च गच्छति।
2. देवी उप. मन्त्र - 2, साब्रवीदं ब्रह्मस्वरूपिणी।
3. वही - 3
4. वही - 18
5. वही - 15.
6. वही - 28
7. वही - पृष्ठ 24-25
   हृत्पुण्डरीकमध्यस्थां प्रातःसूर्यसमप्रभां पाशांकुशधरां सौम्यां वरदाभयहस्तकाम्। त्रिनेत्रां रक्तवसनां भक्तकामदुघां भजे।
8. देवी उप. - 25

शक्ति देवी सभी आकांक्षाओं को पूर्ण करती है इसलिए उसे कामधेनु कहा जाता है। वह राष्ट्रीयता की देवी है। वह अनन्त है, अजन्मा है, अचिन्त्य है, अगम्य है। सर्वत्र उसकी उपस्थिति है, इसलिए वह एक है।[1] वह एक नहीं भी है, क्योंकि वही सम्पूर्ण विश्व है। सचमुच वह ब्रह्म है और इसलिए उसे एक ही साथ विरोधाभासी पदों में कहा गया है। चाहे वह सत्ता हो और असत्ता हो, यह जगत्, देवता एवं अन्य सभी, जिनका अस्तित्त्व है--वह सबसे परे है। इन सबों के पार जहाँ कुछ नहीं है, वही दुर्गा है।[2]

देवताओं ने उसकी प्रशंसा की तथा अपनी प्रार्थनाओं को दुर्गा को समर्पित किया। वह उपहार, प्रार्थना तथा जगत् की स्वतन्त्रता को देखकर प्रसन्न हो रही है। उसकी तीन आँखें हैं तथा उसका वस्त्र लाल है। करुणा की वह सागर है। वह जन्म-मरण के सागर के पार ले जाने वाली है।[3] शक्ति की उपासना-पद्धति की प्राचीनता को दर्शाने के लिए देवी को अर्पित इस स्तोत्र में कुछ वैदिक मन्त्रों को एक साथ मिलाया गया है। यहाँ पर हम एक मन्त्र को उद्धरित करने का लोभ-संवरण नहीं कर सकते, जिसमें माता का एक अति सुन्दर विवरण प्राप्त होता है-"तामग्निवर्णां तपसा ज्वलन्तीं वैरोचिनीं कर्मफलेषु जुष्टाम्। दुर्गा देवीं शरणमहं प्रपद्ये सुतरां नाशय ते तमः।"[4]

तथा निम्न मन्त्र में देवी का अभिवादन क्या ही सुन्दर बन पड़ा है-

तां दुर्गां दुर्गमां देवीं दुराचारविघातिनीम्।[5]
नमामि भवभीतोऽहं संसारार्णवतारिणीम्।।

ब्रह्मोपनिषद् में महात्रिपुरा सुन्दरी की प्रशंसा की गई है। इस उपनिषद् के रचयिता हमें बताते हैं कि सृष्टि के प्रारम्भ में इस देवी के अतिरिक्त

1. देवी उपनिषद् - 26 एकैव विश्वरूपिणी उच्यते।
2. वही - मंत्र - 27-28
3. वही - मंत्र 19
   तापापहारिणीं देवीं भुक्ति मुक्ति प्रदायिनीम्।
   अनन्तां विजयां शुद्धां शरण्यां शिवदां शिवाम्।।
4. वही - मंत्र - 9
5. वही - मंत्र - 28

किसी का भी अस्तित्व नहीं था।[1] बाद में उसी ने सभी सजीव एवं निर्जीव वस्तुओं सहित इस विश्व की सृष्टि की।[2] वही सर्वोच्च शक्ति है, जो तीन भुवनों एवं तीन शरीरों में अन्तर्निहित है। वही उन सबको अन्तर-बाह्य रूप से प्रकाशित करती है।[3] सभी रूप उसी के हैं। वही अपने अवयवों से सभी स्थानों एवं काल को भरती है (सभी स्थान एवं काल उसी के अवयवों से भरा हुआ है)। सभी विज्ञान, शुभ, अशुभ और तटस्थता[4]–वही है। वास्तव में वही आत्मा है और आत्मा के अतिरिक्त जो कुछ भी है, वस्तुएँ अनात्म हैं–चेतना वही है।[5]

चेतन अस्तित्व के पास आनन्द (मोक्ष) के समुद्र पर वही निरूपित है (तरू के रूप में प्रकट है।) ब्रह्मभाव का वह अनूठा चैतन्य है। आत्मा, विश्व, देवता एवं जो कुछ भी अस्तित्ववान् है–वही है। एक मात्र सत्य ललिता[6] है। एवं इसका अन्तर्निहित अर्थ ही सर्वोच्च ब्रह्म हैं। आत्मा एवं ब्रह्म के ऐक्यभाव की अनुभूति में ही उसे जाना जा सकता है।

भावनोपनिषद् में मानव-शरीर को श्रीचक्र के रूप में वर्णित किया गया है। साथ ही एक श्रमसाध्य (विस्तृत) मानसिक उपासना की भी परिचर्चा हुई है।[7] अन्त में श्री की उपासना से सम्बन्धित पाद्य, अर्घ्य, नैवेद्य, होम आदि का वर्णन बड़े आलंकारिक ढंग से किया गया है।[8] सभी कुछ भावना का ही रूप लेती है।[9]

1. ब्रह्मोपनिषद् - V. I - देवी ह्येकाग्र आसीत्।
2. वही - V-2 सर्वं शाक्तमजीजनत्।
3. वही - V-3-4 सैषा परा शक्ति
4. वही - V-5 - सर्वाकारा भट्टत्रिपुरसुन्दरी
5. वही - V-5
6. वही - V-8
7. भावनोपनिषद् - V-2. 26 पंक्ति
8. वही - V.3 15 पंक्ति
9. वही V-4

   एवं भावनापदौ जीवन्मुक्तो भवति
   तस्य देवतात्मैक्य सिद्धिः।
   निष्कामानामेव श्रीविद्या सिद्धि
   न कदापि सकामानामिति।।

सौभाग्य लक्ष्मी उपनिषद् में हमें लक्ष्मी और उसके मन्त्रों के साथ-साथ श्रीसूक्त का भी विवरण प्राप्त होता है।

इस उपनिषद् का स्पष्ट निर्देश है कि श्रीविद्या की प्राप्ति केवल उन्हीं को प्राप्त हो सकती है, जिन्होंने अपनी इच्छाओं पर विजय प्राप्त कर लिया हो।[1] इसमें बहुत अधिक संख्या में विषय-सुखों (आनन्द) का वर्णन प्राप्त होता है। इसके अतिरिक्त तालुचक्र, भ्रूचक्र, निर्वाणचक्र और आकाशचक्र आदि का वर्णन होता है।[2] यहाँ उन विषयों का उल्लेख करने की आवश्यकता नहीं है, जिन पर इन विभिन्न विषय-सुखों में ध्यान किया जाता है। साथ ही ऐसे ध्यान के अलौकिक परिणाम की व्याख्या भी अप्रासंगिक ही होगी।

सरस्वती रहस्योपनिषद् में देवी सरस्वती (शक्ति) का वर्णन चतुर्मुखी देवता ब्रह्मा की पुत्री के रूप में हुआ है। यहाँ यह अप्रत्याशित रूप से गौरवर्णा है, जिसके होंठ रक्तिम तथा उसकी देहयष्टि समुचितरूप से अलंकारों से सुशोभित है।[3] उसके चार हाथ हैं[4] जिनमें वह अक्षमाला, किताब एवं अस्त्रों को धारण किए हुए हैं। वह वाणी की देवी है। वह विश्वास है, धारणाशक्ति है तथा विवेकशील अवतार है।[5] भार्या है वह स्रष्टा की। कहा जाता है कि वह कश्मीर में[6] निवास करती है किन्तु हमें यह भी पता चलता है कि उसका अपना बसेरा तो उसके भक्तों की जिह्वा के अग्र भाग पर है।[7] काव्य की देवी भी वही है। काव्यात्मक रूप में उसकी व्याख्या एक ऐसी देवी के रूप में हुई है जिसके बाल निशापति चन्द्रमा की ज्योत्स्ना से सुनहले दीख पड़ते है। अमृत की वह नदी है जो जागतिक

---

1. सौभाग्यलक्ष्मी उपनिषद् - I/12.
2. वही - III/6-9.
3. सरस्वती उपनिषद्
4. वही - V-5
5. वही - V-38,10
6. वही - V -37 - नमस्ते शारदे देवी कश्मीर पुरवासिनी।
7. वही - V. 38

अस्तित्व की पीड़ाओं को दूर करती है। वास्तव में वह है भी ऐसी ही और इसलिए ब्रह्म स्वरूप भी उसमें अन्तर्निहित है। वह प्रकृति के द्वारा इस जगत् की सृष्टि करती है।

सीतोपनिषद् एवं रामतापिनी उपनिषद् में सीता शक्ति है तथा उसकी पहचान प्रकृति के साथ या राम की सृजनात्मक शक्ति के साथ की गई है।[1] वह मूलप्रकृति एवं माया के नाम से अभिहित है। उसकी व्याख्या सभी वेदों, देवों और लोकों के सम्मिलित रूप में की गई है।[2] राम के सहयोग एवं साहचर्य (नैकट्य) से वह देवी विश्व की सृजन -पालन एवं संहार करती है। यद्यपि वह अपने रूप में प्रकाशित नहीं है, फिर भी उसे चेतन सत्ता एवं अचेतनता में स्पष्ट किया गया है।[3] यही कारण है और वही उन कारणों की परिणाम भी है। सभी का आधार वही है। धर्म सदाचार कीर्ति-सब वही हैं। भाग्य, अदृष्ट की देवी भी वही है। देवता से न तो वह भिन्न है और न ही अभिन्न।[4]

सीतोपनिषद्–शक्ति के तीन रूपों की चर्चा करता है–इच्छा-शक्ति (संकल्पशक्ति) क्रिया-शक्ति (कार्य करने की शक्ति) तथा साक्षात् शक्ति।[5] पुनः इच्छाशक्ति के तीन प्रकारों का भी वर्णन किया गया है[6] (1) योग शक्ति-विश्व के प्रलय की स्थिति में देवता में रहने वाली शक्ति। (2) भोगशक्ति–भक्तों का नैतिक एवं आध्यात्मिक व्यवहार तथा (3) वीरशक्ति[7]–अलौकिक अद्भुत शक्तियाँ कहलाती हैं।

दो और उपनिषद् हैं–कौल एवं तर्कोपनिषद्। यद्यपि ये काफी बाद के हैं, तथापि काफी प्रसिद्ध हैं। कौलोपनिषद्–शाक्तों के कौलसम्प्रदाय का

---

1. वही - V 41
2. वही - V 46-48
3. सीतोपनिषद् - V-7-8
4. वही - V -10.
5. वही - V-10
6. वही - V 10
7. वही - 11

बाइबिल माना जाता है। इसके सिद्धान्तों का ही प्रधान प्रभुत्व हैं। यह शाक्त विचार धारा के वाममार्ग का वर्णन करता है, जिसे श्री शंकराचार्य शंकर का अनुमोदन (या स्वीकृति) प्राप्त नहीं है। श्री शंकर ने अपने सौन्दर्यलहरी में कौल मार्ग की विधियों को निरुत्साहित किया है। तर्कोपनिषद् में प्रणव की पहचान शाक्तों के मूल मन्त्र के साथ हुई है।

उत्तरकालीन शाक्त उपनिषदों के आलोचनात्मक अध्ययन से स्पष्ट होता है कि वे शक्ति सम्प्रदाय के पौराणिक आधार का ही अनुगमन करते हैं। इससे यही प्रदर्शित होता है कि पौराणिक साहित्य का इन उपनिषदों के विचारों एवं सिद्धान्तों पर गहरा प्रभाव पड़ा है।

1. वही - 35
2. वही - 36-37.

अध्याय 3

शक्ति उपासना के अभिलेखीय साक्ष्य

शक्तिवाद शक्ति की उपासना है। यह मातृत्व सम्पन्न स्त्री देवता की पूजा है जो ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति तथा पुनःसर्जन में मुख्यकारक होता है।[1] सामान्य रूप में 'शक्ति' पद से स्त्री-देवी का बोध होता है एवं विशेषरूप में यह किसी देवता के शक्ति या बल के लिए प्रयुक्त होती है।[2] सामान्यतया शक्ति शिव की पत्नी के रूप में जानी जाती है तथा उसकी उपासना अवतारों या विभिन्न रूपों में ही की जाती है। जिनमें देवी, दुर्गा एवं काली सब से अधिक लोकप्रिय हैं।[3] शक्ति हिन्दू देव-परिवार की एक महत्वपूर्ण सदस्या है। देव-त्रिमूर्ति में भी वह परिगणित होती है। यथा-विष्णु, शिव और शक्ति।

ईसा-पूर्व युग में आस्तिकतावादी सम्प्रदाय (ईश्वरवादी सम्प्रदाय) अपने निर्माण-काल से ही गुजर रहे थे। वैष्णव और शैव सम्प्रदाय तो निश्चित रूप से दो शक्तिशाली सम्प्रदाय के रूप में प्रतिष्ठित हो चुके थे किन्तु शाक्त और सौर-सम्प्रदाय की जड़ें अभी भी गहरी नहीं हुई थीं। शाक्त आर्यावर्त में मुश्किल से ही कहीं पर हों, किन्तु उनका आविर्भाव आर्यावर्त्त के पश्चिम और पूर्व क्षेत्रों में हुआ होगा। यद्यपि कुछ शक्ति-उपासक गंगा-यमुना की घाटी में भी बस चुके होंगे किन्तु उनकी भूमिका नगण्य ही थी।[4]

---

1. देवी भागवत - I/2/19-22 सीतोपनिषद् - 34.
2. ए.ए. मैकडोनेल - संस्कृत इंगलिश डिक्शनरी पृष्ठ - 305 मेदिनी कोश, पृ. 61
3. इलियट -हिन्दूज्म एण्ड बुद्धिज्म - Vol. II पृ. 274
4. इवोल्यूशन ऑफ थीस्टिक सेक्ट्स इन एन्सियन्ट इण्डिया, एस. चट्टोपाध्याय - पृष्ठ 2

ईसा पूर्व युग में शाक्तोपासना या महादेवियों की उपासना के इतिहास को जानने के लिए पुरातात्विक साक्ष्य के रूप में हमें केवल कुछ मिट्टी की पकी हुई वस्तुएँ प्राप्त होती हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि हड्प्पावासियों में शक्ति की उपासना प्रचलित थी। 'वहाँ से मिले गोल-पत्थर एवं बर्तनों पर देवियों के चित्रण उसका प्रमाण है।

इनके अध्ययन के आधार पर हम अनुमान कर सकते हैं कि हड्प्पावासियों के बीच शक्ति पूजा प्रचलित थी। अपनी पुस्तक में व्हीलर[1] उल्लेख करते हैं कि बहुत बड़ी संख्या में पकी हुई मिट्टी की स्त्री-मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं, जिसे पश्चिम एशिया के धर्मों एवं यूरोप के कुछ हिस्सों में प्रसिद्ध महान मातृदेवी से समीकृत किया जा सकता है।

इस सन्दर्भ में दो मुहरों का अध्ययन उल्लेखनीय हैं–

1. प्रथम मुहर में हम एक नग्न स्त्री-चित्र पाते हैं, जो आगे की ओर झुकी हुई है, जिसके पैर फैले हुए हैं तथा जिसके गर्भ से एक पौधा निकल रहा है। यह निश्चित रूप से मातृदेवी 'भू' या पृथ्वी को द्योतित करता है। उसी मुहर के दूसरे तरफ एक पुरुष की आकृति है जिसके हाथ में हाँसे के आकार का एक चाकू या छुरा है तथा भूमि पर एक औरत बैठी हुई है जिसके दोनों हाथ उसकी प्रार्थना में उठे हुए हैं। इसकी व्याख्या मातृदेवी के सामने नरबलि प्रदान के रूप में की गई है।

2. दूसरे मुहर का चित्र और अधिक रोचक है। एक स्त्री पीपल के पेड़ की एक शाखा पर, जो आगे दो टहनियों में विकसित है खड़ी है। एक उपासक एक बकरा लाया है, जो सम्भवतः रूप से बलिदान के लिए ही प्रयोज्य है तथा नीचे के भाग में बहुत सारे लोग खड़े है[1], जो बलिकर्म में भाग लेने के लिए आए हुए हैं। यहाँ पर जो स्त्री-चित्र है–वह निश्चित रूप से मातृदेवी को ही प्रदर्शित करता

---

1. इण्डस वैली सिविलाइजेशन - पृष्ठ 68

है तथा चित्र का सारा दृश्य हमें शक्त्युपासना के वर्तमान रूप का स्मरण दिलाता है।

उपर्युक्त साक्ष्य से यह बिल्कुल स्पष्ट है कि सिन्धु-सभ्यता के काल में शक्त्युपासना प्रचलित थी।

यहाँ यह उल्लेखनीय है कि यद्यपि शाक्तसम्प्रदाय के प्रमाणस्वरूप प्रत्यक्ष रूप से ईसा पूर्व युग के कोई भी सिक्के या अभिलेख नहीं प्राप्त होते, किन्तु उत्तर भारत के विभिन्न भागों से हमें कुछ पत्थर के रोचक डिस्क एवं पकी हुई मिट्टी की वस्तुएँ प्राप्त होती हैं, जिन पर देवियों का चित्रांकन हैं। प्रथम शताब्दी ई.पू. के पाँचाल नरेश भद्रघोष के सिक्कों का अध्ययन करते हुए ऐलन का निरीक्षण है कि–'भद्रघोष के सिक्कों के दूसरे तरफ कमल पर खड़ी एक स्त्री देवी चित्रित है, जिसे हम भद्रा मान सकते हैं। जिससे भद्रघोष[1] के नाम का संकेत मिलता है या वह लक्ष्मी भी हो सकती है।'

तक्षशिला, कोसाम, बनारस के निकट राजघाट तथा पटना सिटी से बहुत से पत्थर के रोचक डिस्क प्राप्त हुए हैं, जिनसे ईसा पूर्व युग में मातृ-उपासना-पद्धति के प्रचलन पर महत्वपूर्ण प्रकाश पड़ता है।[2] मार्शल को तक्षशिला में पकी हुई मिट्टी की छोटी-छोटी बहुत-सी मूर्तियाँ मिली थीं, जिसका कुछ सम्बन्ध मातृ-उपासना-पद्धति से हो सकता है।[3] पटना सिटी से मिले पत्थर के कुछ डिस्कों पर नग्न स्त्री के चित्र हैं, जिसके चारों ओर पेड़-पौधों का चित्रण है। यह देवी के 'शाकम्भरी' पहलू पर ध्यान दिया गया है।

तक्षशिला से द्वितीय शताब्दी[4] ई. पू. का एक मुहर प्राप्त हुआ है,

1. एलन - ब्रिटिश म्यूजियम केटलोग ऑफ क्वाइन्स ऑफ एन्सीएन्ट इण्डिया, पृष्ठ - 114-115
2. एस. चट्टोपाध्याय - इवोल्यूसन ऑफ थीएस्टिक सेक्ट्स इन एन्सीएन्ट इण्डिया - पृष्ठ 54
3. मार्शल - तक्षशिला II पृष्ठ 448
4. वही पृष्ठ 449

जो ईश्वर और उसकी शक्ति के समवेत रूप का सम्भवतः सबसे प्राचीन पुरातात्विक साक्ष्य है। इस के आधार पर मार्शल ने निष्कर्ष निकाला है कि मौर्यकाल में निस्संदेह मातृ-उपासना-पद्धति महत्वपूर्ण हो चली थी।[1] ईसवी सन् के आते-आते हमें कुषाण सम्राट हुविष्क का एक सिक्का मिलता है, जिस पर एक पुरुष एवं एक स्त्री चित्रित है एवं उन दोनों के बीच संयुक्त अक्षर में कुछ लिखा हुआ है। इनके अध्ययन के उपरान्त एक की पहचान भवेश एवं दूसरे की नाना, जिसका तादात्म्य सुमेरियो-बेबीलोनियन देवी 'इसतर' (इष्टर) से किया गया है। साथ ही हुविष्क की कुछ राजाज्ञाओं पर हमें एक स्त्री-चित्र मिलता है जिसके साथ ओम्मा या उमा का लेख भी संलग्न है।[2]

शिलालेखों के अध्ययन से विचार करने पर हम कह सकते हैं कि गुप्तकाल से पहले, किसी भी शिलालेख में प्रत्यक्ष रूप से शक्ति एवं उसकी उपासना-पद्धति का उल्लेख नहीं मिलता। गुप्तराजाओं एवं उसके उत्तराधिकारियों के शिलालेखों में पहली बार मातृ-उपासना-पद्धति का उल्लेख मिलता है। गुप्तराजाओं के कुछ सिक्कों के दूसरे तरफ देवियों का चित्रण मिलता है। यथा-चन्द्रगुप्त प्रथम के सिक्कों या चन्द्रगुप्त द्वितीय[3] के सिंह-वाहिनी प्रकार के सिक्के एवं समुद्रगुप्त के व्याघ्र-प्रकार के सिक्के मिलते हैं।

1. कुमारगुप्त प्रथम के सिंह-वाहिनी प्रकार के सिक्कों पर देवी, दुर्गा सिंहवाहना[4] के रूप में चित्रित है।
2. घुड़ सवार प्रकार के सिक्कों से यह पता चलता है कि देवी मयूर को फल भेंट कर रही है।[5] इस देवी की पहचान दुर्गा सप्तशती में वर्णित कुमारी अम्बिका के आधार पर दुर्गा के रूप में की

---

1. इवोल्यूसन ऑफ थीस्टिक सेक्ट्स इन एन्सीएन्ट इण्डिया - पृष्ठ 55
2. इन्साइक्लोपीडिया ऑफ रिलिजन एण्ड इथिक्स - Vol. VIII पृष्ठ 428.
3. आर. के. मुखर्जी-गुप्ता इम्पायर पृष्ठ 132.
4. वही पृष्ठ 85.
5. सप्तशती - VIII/17, XI-15

गई है। दुर्गा युद्ध की देवी है, जो अपने वाहन मयूर को खिला रही है। कुमारी अम्बिका को गुह-रूपिनी[1] कहा जाता है।

3. समुद्रगुप्त के सिक्कों पर चित्रित सिंहारूढ़ा देवी निश्चित रूप से दुर्गा सिंह वाहना है जिसकी शक्ति और महिमा का वर्णन मार्कण्डेय पुराण में मिलता है। इस प्रकार यह विश्वास किया जा सकता है कि अपने सैनिक अभियानों की सफलता के लिए समुद्रगुप्त दुर्गा का उपासक रहा होगा।[2]

अभिलेखों में सम्भवतः शक्ति का पहला उल्लेख जो उपलब्ध है, वह विक्रम संवत् 480, अर्थात् 423-24 ई. के मालवा के शासक विश्वकर्मा का गंगाधर पाषाण शिलालेख है। इससे पता चलता है कि गुप्तकाल में कैसे शक्त्युपासना पद्धति धीरे-धीरे तंत्रवाद की ओर बढ रही थी। अभिलेख कहता है कि विश्ववर्मन[3] के एक मंत्री मयूराक्ष ने देवी माताओं का एक मन्दिर बनवाया।[3]

यहाँ 35वें और 36वें वाक्य का उल्लेख अपेक्षित है -

35- संरज्याञ्जलि- कूदृलन्नत- शिराभीतःप्रयात्त्यं शुभान् मातृणां च।

36-(प्रभु) दिल धनात्यथ -निघ्नादिनाम्। तन्त्रोद्भूत प्रबल पवनोदवर्तिताम्भोनिधीनाम्।

पूजा एवं मन्दिर के मरम्मत के लिए दान भी दिया गया था।[4]

उपयुक्त वर्णनों के विश्लेषण करने पर निष्कर्ष स्वरूप हम पाते हैं कि-

(क) ये दिव्यमातृकाएँ (मातृदेवियाँ) एक से अधिक थीं।

---

1. गुप्ता इम्पायर - पृष्ठ 54
2. वही - पृष्ठ 33
3. फ्लीट - Vol. III पृष्ठ 78
4. इपिग्राफिका इण्डिका - Vol.-1, पृष्ठ 159
   'नवदुर्गायतनाय च पूजा संस्कारार्थम्'।

(ख) ये दिव्यमातृकाएँ स्त्री-धौलों या डाकिनियों से सम्बद्ध थीं।

(ग) एवं यह मातृ-उपासना जादूगरी या-इन्द्रजाल-मायाजाल आदि से भी सम्बद्ध थी।

स्कन्दगुप्त के बिहार-पाषाण शिलालेख से भी इन दिव्य मातृकाओं का संकेत मिलता है– 'स्कन्दप्रधानैर्मुविमातृभिश्च[1], इसका शुद्धव्याकरण रूप इस तरह होना चाहिए–

स्कन्दप्रधानाभि मातृभिः।

1. महाराजा संक्षोभ (528 ई.) के रवोह ताम्रपत्र लेख में लक्ष्मी के स्थानीय रूप-देवी पिष्ठपुरी के मन्दिर बनाए जाने का वर्णन है।[2] इसमें देवी पिष्ठपुरी और उसके मन्दिर के साथ-साथ यह भी वर्णन किया गया है कि मन्दिर की सहायता के लिए आधा गांव दान में दे दिया गया है।।[3]

2. महाराजा संक्षोभ के एक दूसरे रवोह अभिलेख में भी देवी पिष्ठपुरी का वर्णन मिलता है। इस लेख में भी संक्षोभ के पहले लेख के समान ही वर्णन मिलता है।[4]

3. महाराजा सर्वनाथ के लेख से ज्ञात होता है कि मानपुर गाँव में देवी पिष्ठपुरी का मन्दिर है एवं उसका प्रशासक कुमारस्वामी था।[5]

पाँचवीं सदी के पूर्वार्द्ध में मौखिरी सेनापति (सुमुख) अनन्तवर्मन का नागार्जुनी पहाड़ी अभिलेख एक शाक्त-शिलालेख है। इसका विषय

---

1. फ्लीट - इन्सक्रिप्सन इन्डीकेरम - Vol. VIII पृष्ठ 47-48
2. डी.सी. सरकार - सेलेक्ट संस्कृत इन्सक्रिपसन्स, पृ. 374
3. खोह कॉपर प्लेट इन्सक्रिप्सन ऑफ महाराजा संक्षोभ 528 ई. (G.E.209) वाक्य -13-14
4. रवोह ताम्रपत्र लेख ऑफ सर्वनाथ (सेन्ट्रल इण्डिया) वाक्य - 12-13
5. रवोह कॉपर प्लेट इन्सक्रिप्सन ऑफ महाराजा सर्वनाथ ईयर 214, वाक्य - 11-13

है—अनन्तवर्मन के द्वारा शिव की पत्नी पार्वती की प्रतिमा को कात्यायनी के नाम से गुफा में स्थापित किया गया था। साथ-साथ उसी देवी को भवानी नाम से अभिहित करके ग्रामदान करने का भी उल्लेख मिलता है1[1] वाक्य-8—'अद्भुत-विन्ध्य भूधरगुहामाश्रित्य कात्यायनी।'

वाक्य-10—'ग्राममनल्प-भोगविभवम् रम्यं भवान्यै ददौ।'

प्रथम वाक्य में देवी की अनुकम्पा। उसके द्वारा राक्षस-महिषासुर के वध का भी उल्लेख किया गया है। उसी गुफा में अनन्तवर्मन के एक दूसरे शिलालेख में शिव के अर्द्धनारीश्वर (आधा पुरुष आधी स्त्री) रूप की प्रतिमा को स्थापित करने का उल्लेख है। जिसमें दाहिनी तरफ आधा भाग पुरुष देवता का है तथा बाईं तरफ आधा भाग स्त्री देवी का है।[2]

वाक्य 4—'बिम्बं भूतपतेर्गुहाश्रितं-देव्याश्च'

बालादित्य के पुत्र प्रकटादित्य के सारनाथ पाषाण शिलालेख में शिव की पत्नी के रूप में गौरी का नाम मिलता है।[3]

वाक्य 4 गौरी इव शूलपाणेः।

अभिलेखीय प्रमाणों से यह स्पष्ट है कि 600 ई. से 1000 ई. के बीच भारत में शक्त्युपासना का प्रचलन काफी विस्तृत था।

वर्मलाट के वि. सं. 612[4] के वसन्तगढ शिलालेख तथा महेन्द्र पाल द्वितीय के वि.सं. 1002[5] के प्रतापगढ़ शिलालेख में उसकी (देवी की शक्ति का) 'दुर्गा' के रूप में स्तुति की गई है।[5] आगे चलकर (परवर्ती काल में) उसकी स्तुति महिषासुरमर्दिनी और कात्यायनी[6] के रूप में भी की गई है।

---

1. एसियाटिक रीसरचेज - Vol. 1 पृष्ठ 282-283, 279 फ्लीट - III पृष्ठ 228
2. फ्लीट - III पृष्ठ 22
3. वही - पृष्ठ 285
4. इपिग्राफिका इण्डिका - IX पृष्ठ 191 श्लोक-1
5. वही - XIV पृष्ठ 182 श्लोक 4
6. वही - श्लोक 3-4

हम उसे साँभर से प्राप्त वि.सं. 991[1] के एक पाषाण शिलालेख में शाकम्भरी के रूप में, वाक्पतिराजदेव[2] के मालवा शिलालेख में गिरिजा के रूप में, वि. सं. 1056[3] के किन्सरिया शिलालेख में दुर्गा, काली एवं कात्यायनी के रूप में तथा गुप्त संवत् 269[4] के दधिमतिशिलालेख में दधि मति के रूप में पाते हैं। देवी दधिमति का मन्दिर भी बनाया गया था।

चालुक्य वंश के प्रारम्भिक शिलालेखों से हमें ज्ञात होता है कि मातृकाएँ (मातृदेवियाँ) उनके परिवार की संरक्षक देवियाँ थीं। इस वंश के लगभग सभी शिलालेखों में सात मातृदेवियों का उल्लेख मिलता है।

प्राम्भिक चालुक्य वंश के विजयराज (472 ई.) के एक शिलालेख में भगवती गौरी की उपासना का वर्णन है, जिसे नन्दा भी कहा गया है।[5] उसी शिलालेख में मातृगणों को चालुक्य की अभिभावक देवियाँ भी कहा गया है।[6] उसमें मातृगणों को बलि नैवेद्य अर्पित करने की एक प्राचीन रीति का भी उल्लेख मिलता है।[7]

पुलकेशिन द्वितीय (610-614 ई.) के एक दान (पत्र) में सप्त मातृकाओं को एक बार फिर चालुक्यों की संरक्षक देवियों के रूप में उद्धृत किया गया है।[8] पूर्वी चालुक्य वंश के विष्णुवर्धन (662-671 ई) के एक शिलालेख में उसे त्रिभुवन माता कहा गया है।[9] (त्रिभुवनमातृभि

---

1. इण्डियन ऐन्टीक्वेरी - LVIII पृष्ठ 234
2. वही 51 पृष्ठ 1 श्लोक 1
3. इपिग्राफिका इण्डिका - XII पृष्ठ 69 श्लोक 3-4
   यह शिलालेख देवी काव्यमाला को समर्पित एक मन्दिर में पाया गया है।
4. वही - XI पृष्ठ 303
5. नन्दां भगवतीं गोरीमाराध्य इ. VII पृष्ठ 241
6. मातृगणपरिपालितानां (ई. पू. VII पृष्ठ 241
7. कुमार नारायणमातृगणाँश्च।
   इण्डियन ऐन्टीक्वेरी -Vol. VII पृष्ठ 185-86 एवं 197-19.
8. ई. पू. VII पृष्ठ 191
9. वही - 31 एवं ई. इ० Vol. 32 (642-55 ई.)

रक्षितानां चालुक्यनाम्--31)[1] यहाँ 'त्रिभुवनमातृभिः' प्रयुक्त हुआ है। शक्तिवाद (शक्तिमत) के लिए निम्नलिखित चालुक्य शिलालेख महत्वपूर्ण हैं।

1. चालुक्य नरेश अभिनवादित्य का नीलकुण्ड दान पत्र
2. पूर्वी चालुक्य वंश के कीतिवर्मन द्वितीय[2] के दान पत्र एवं अम्मर[3] के तण्डीकुण्ड दानपत्र
3. प्रारम्भिक चालुक्यों के नागवर्धन[4] (6ठी सदी ई०) का चालुक्य दान ताम्रपत्र
4. आन्ध्र से प्राप्त विक्रमादित्य । के 655 ई० का पत्र[5] (धातुपत्र)
5. विनयादित्य का 687 ई० का जेजुरी पत्र[6]

1. मौखिरी-राजा यशोवर्मन के विषय मे कहा जाता है कि अपने दिग्विजय अभियान के दौरान उसने रक्तपिपासिनी देवी विन्ध्यवासिनी के मन्दिर का दर्शन किया था। यह मन्दिर मिर्जापुर जिला के दक्षिणी भाग में अवस्थित था। यह उल्लेखनीय है कि आठवीं सदी ई० तक इस देवी को नरबलि अर्पित किया जाता था[7]।
2. मौखरियों के देवबरनार्क शिलालेखों[8] में दुर्गा के एक चित्र रूप का उल्लेख है।
3. एक छोटे से मंदिर में बहुत बडी विशाल मूर्ति महिषासुरमर्दिनी की है। आदित्यसेन का अप्सद ग्रम शिलालेख वहीं से प्राप्त हुआ था।[9]

---

1. इण्डियन ऐन्टीक्वेरी - Vol. VII पृष्ठ 18 78 (734 ई.)
2. ई.इ. Vol.-14, पृष्ठ 202 (757 ई.)
3. वही Vol.-28, पृष्ठ 168 (958-59 ई.)
4. भण्डारकर वर्क्स - Vol. -3, पृष्ठ 272
5. ई. इ. Vol.. पृष्ठ 32 182 वाक्य 3
6. वही - Vol. XIX पृष्ठ 63
7. इडुवार्ड ए. पेरिस, द मौखरीज, मद्रास - 1934 पृष्ठ 179
8. वही पृष्ठ 198
9. पी. कनिंघम, AS. IR. XVIM पृष्ठ 68, 200

दक्षिण (दक्कन) के प्राचीन कंदब वंश के राजा शान्तिवर्मन के तलगुंडा पाषण स्तम्भ शिलालेख में सप्तमातृकाओं का उल्लेख मिलता है।[1]

1. चेदिवंश का तृतीय सम्राट नागभट्ट दुर्गा का उपासक था।[2]

भोजदेव के वि॰ स॰ 893 के वराह ताम्रपत्र लेख में श्री वत्सराज देव के पुत्र नागभट्टदेव का वर्णन इस प्रकार है–'परम भगवती भक्तो'।

2. उत्तर प्रदेश में स्थित अनूपशहर से सात मील उत्तर से प्राप्त आहार पाषाण शिलालेख (लेखसंख्या-1) में देवी नन्दा के मन्दिर का उल्लेख है।

चौथे वाक्य में इस तरह वर्णन है–

पत्तनाद्बहि दक्षिणस्यां दिशि या नन्दा भगवती देवी तस्याः पक्वेष्टके गृहम्।

वाक्य नौ–

श्री सर्वमंगल-देव्यायतनेन।

यह शिलालेख 856 ई. का है तथा कन्नौज के राजा भोजदेव से सम्बन्धित है। शहर के बाहर स्थित इस मन्दिर में देवी नन्दा को मंगल करने वाली कहा गया है।[3]

चीनी यात्री ह्वेनसांग (625-645 ई.) की दुर्गा के आगे बलि दी जाने वाली थी। किन्तु एक अप्रत्याशित तूफान के आ जाने की वजह से वह चमत्कारपूर्ण ढंग से बच गया। मध्यभारत में उदयगिरि एवं भूमरा में दुर्गा का एक अन्य रूप महिषासुरमर्दिनी के मन्दिर एवं चित्र पाए गए हैं।[4] ये सभी गुप्तकाल से सम्बन्धित हैं।

---

1. इण्डियन ऐन्टीक्वेरी, Vol.. V पृष्ठ 27 वाक्य 8
2. ऐपिग्राफिका इण्डिका - Vol.. XIX पृष्ठ 18
3. वही - पृष्ठ 59-60
4. पी. कनिंघम-आरक्योलोजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया - X, पृष्ठ 90

मैत्रक राज्य के धर्म में देवी उपासना को एक महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त था। वल्लभी शिलालेख में ऐसी दो देवियों का वर्णन हैं–'पानराज्या' या 'पाण्डुराना"[1] तथा 'कोट्टामबिका[2] देवी'। द्रोणसिंह (523 ई०) ने देवी के मन्दिर के रख रखाव एवं सहायता (भरण-पोषण) के लिए एक गाँव दान में दिया था।

पाँचवीं सदी ई० के अन्त होते होते काठियाबाड़ में हस्तवप्र (आधुनिक हथव) में देवी के मन्दिर अस्तित्व में आने लगे थे। कुछ अज्ञात कारणों की वजह से इन्हें दान मिलना बन्द हो गया था। ध्रुवसेन द्वितीय ने (639-40 ई०) दान को उसे स्थायी कर दिया। उसने मातृदेवी के मन्दिर की मरम्मत भी करवाई थी।[3]

सोमनाथ के भद्रकाली मन्दिर से प्राप्त एक शिलालेख के अनुसार भीमदेव (1022-72 ई०) ने इस मन्दिर की मरम्मत करवाई थी।[4] महेन्द्रपाल प्रतिहार के लेख में देवी के विभिन्न नामों की चर्चा की गई है।[5] यह शिलालेख दुर्गा की स्तुति से आरम्भ होता है तथा इसमें वट-यक्षिणी देवी के मन्दिर का उल्लेख है जिसका प्रबन्ध-कार्य एक शैव-मठ को सौंप दिया गया था।[6]

एक दूसरे अभिलेख में उसे 'कंचनदेवी' सर्वमंगलादेवी' या 'अम्बा' के नाम से अभिहित किया गया है। इसका अभिप्राय यह है[7] कि यहाँ देवी के केवल कृपालु रूप को उभारा गया है।[8] जबकि दूसरे लेख में उसकी स्तुति निम्नलिखित शब्दों में की गई है–

---

1. एच.डी. सांकलिया-आरक्योलोजी ऑफ गुजरात, पृष्ठ 218
2. जे.बी. बी. आर. ए. एस. XX पृष्ठ 2 (दो वल्लभी ताम्रपत्र) एवं ई. इ. XVI पृष्ठ 17 (द्रोण सिंह का भमोद्रा मोहता पत्र)
3. वही - पृष्ठ 9-10
4. जे.बी.बी. आर. ए.एस. - XX पृष्ठ 6
5. के.जे. विस्जी, स्टडी ऑफ मैत्रकाज ऑफ वल्लभी, पृष्ठ 29
6. भद्रकाली इन्सक्रिप्सन एट सोमनाथ, बाम्बे गजेटियर, 1952 पृष्ठ 29
7. ई. इ. - Vol. XIV पृष्ठ 177 -84
8. वही - Vol. XIV पृष्ठ 325

दुर्गां जयाख्ये प्रबला सुरोच्चैर्विध्वंसनी स्तोत्र परम्पराभिः।
दुर्गां स्तुवन्नेष सदैव भक्त्या कृताञ्जलिः पुण्यतमामुपास्ते।।[1]

यहाँ हम निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि मध्यकालीन युग (मध्यकाल) के अभिलेखों एवं मूर्ति (निर्माण) कला में भगवान् शिव के समान, देवी का उग्र एवं कृपालु रूप दोनों परिलक्षित (चित्रित) हुआ है।

एक अभिलेख में देवी की प्रशंसा चण्डी के रूप में की गई है, जिसकी उपासना उत्तरी भारत के पूर्वी भाग में विस्तृत रूप से की जाती थी।[2]

इस प्रकार हम देखते हैं कि अपने भयानक रूप में, यथा-काली, दुर्गा, महिषासुरमर्दिनी एवं चामुण्डा के रूप में वह अपने उपासकों से अनिवार्य रूप से पूजा की अपेक्षा करती है।

कालिंजर के नीलकण्ठमन्दिर के अन्दर से प्राप्त कालिंजर पाषाण शिलालेख (वि.सं. 1258) के 32 पंक्तियों में से प्रथम 24 पंक्तियों में शिव एवं पार्वती की स्तुति की गई है।[3] यहाँ राजा परमार्दि को 'दर्शाणाधि पति' कहा गया है।

कलचुरि-वंश (परिवार) से सम्बन्धित एक शिलालेख गोरखपुर में पाया गयाहै। 24 पंक्तियों वाला यह शिलालेख कसिया पाषाण शिलालेख के नाम से प्रसिद्ध है। 12वीं सदी के इस लेख में नागरी-अक्षरों का इस पर प्रभाव है। प्रथम चार श्लोक शिव, पार्वती, तारा एवं बुद्ध की स्तुति में समर्पित हैं।[4] राजाधिराज, कुमारपाल (1153 ई०) के किरडु पाषाणस्तम्भ शिलालेख से ज्ञात होता है कि राजा ने पार्वती के पति शिव की कृपा से अन्य सभी राजाओं को जीत लिया था।[5] महाराष्ट्र राज्य के दक्षिणी सतारा जिले के जैनतालुक में अवस्थित अंकुलजी से प्राप्त 1170 ई० के एक शिलालेख में कहा गया है कि अंकुलजी गाँव, 64 योगिनियों की अध्यक्षा

1. वही - Vol. I पृष्ठ 334
2. वही - Vol. XVII पृष्ठ 359
3. एच.सी. रे - डायनिस्टिक हिस्ट्री ऑफ नार्थ इण्डिया, पृष्ठ 718
4. वही - पृष्ठ 748
5. वही - पृष्ठ 979

देवी महायोगेश्वरी, उग्रचामुण्डा का निवास स्थान है।[1] पश्चिमी चालुक्य नरेश विक्रमादित्य के अधीनस्थ एक महासामन्त चामुण्डाराय के विषय में वर्णन है कि उसे 64 योगिनियों का अनुग्रह (वरदहस्त) प्राप्त था। इस बात की सूचना मद्रास राज्य के वैल्लारी जिले के हडगलमी तालुका में अवस्थित हलगोण्डी से प्राप्त 1093 ई० के एक अभिलेख से प्राप्त होती है।[2] कर्नाटक के शिलालेख में 64 योगिनियों की चर्चा बहुधा प्राप्त होती है। यह शिलालेख 500 सदस्यीय एक वृहत्व्यावसायिक निगम श्रेणी की प्रशंसा में है।[3] हैदराबाद राज्य के कोफल जिले के कुकनुर में स्थित महामाया के स्थानीय मन्दिर से प्राप्त एक शिलालेख में–

आधुनिक देवी महामाया की प्रशंसा (स्तुति) ज्येष्ठा के नाम से की गई है।[4] शाक्त और शैव देवताओं के बारे में और भी रुचिकर विवरण अभिलेख में वर्णित हैं।

धारवाड़ जिले के खवेन्नूर तालुक में स्थित देवी-होसुर से प्राप्त 1148 ई० के एक शिलालेख से एक बहुत महत्वपूर्ण सूचना प्राप्त होती है। अभिलेख कहता है कि पूर्वोक्त देवी होसुर नामक स्थान में महाराष्ट्र और कर्नाटक में प्रसिद्ध देवी मालची (संस्कृत रूप मालती) के पीठ के रूप में बहुत ही प्रसिद्धि प्राप्त कर ली थी।[5]

राजस्थान से हमें देवी महिषासुरमर्दिनी की बहुत सारी उत्कीर्ण प्रतिमाएं प्राप्त होती हैं, जो मध्य काल से सम्बन्धित हैं। यह कहा गया है कि दुर्गा की उपासना सबसे प्राचीन उपासना है, जो आज भी राजपूताना में बहुत अधिक प्रचलित है।[6]

---

1. बॉम्बे कर्नाटक कलेक्सन नं. 93 ऑफ 1940-41
2. साउथ इण्डिया इन्सक्रिप्सन - IX I प्लेट 1 पृ. 163
3. वही - नं. 139 Vol. XI प्लेट II नं. 148
4. द जर्नल ऑफ ओरिएन्टल रिसर्च, मद्रास Vol. XIX - 1949-50 पृष्ठ 287
5. बाम्बे-कर्नाटक कलेक्सन नं. - 34, 1932-33 Vol. XXV पृष्ठ 229
6. आर्ट एण्ड आरकिटेक्चर ऑफ बीकानेर स्टेट, ऑक्सफोर्ड 1950 पृष्ठ 30

(1) वि. सं. 1513 ई० के महिषासुरमर्दिनी की एक प्रतिमा छोटी पहाड़ी के शिखर पर पाया गया है। (यहाँ वि. सं. 1516 का त्रिपुरा भैरवी की भी एक प्रतिमा प्राप्त होती है।)

(2) बीकानेर राज्य से पुगल नामक स्थान से महिषासुरमर्दिनी की पाषाण पर उत्कीर्ण एक प्रतिमा प्राप्त होती है। उसका समय वि.सं. 1465 ई० है[1]। तथा यहाँ पर तीन पंक्तियों का एक शिलालेख भी प्राप्त हुआ है जिससे यह ज्ञात होता है कि उपर्युक्त मूर्त्ति जैसलमेर के महाराज केल्हण की आज्ञा से बनवायी गयी थी।

(3) सच्चिका देवी (महिषासुरमर्दिनी) की मूर्त्ति यह श्वेत संगमर्मर की है तथा इसका समय वि. सं. 1237 ई० है। इसकी स्थापना जैन साधिकाओं के समुदाय के प्रमुख के निर्देशन में किया गया था। शिलालेखों में छः पंक्तियाँ हैं–तेनेयं कारिता देवी।[2]

निष्कर्ष

इस प्रकार हम देखते हैं कि भारतीय इतिहास के पूर्व मध्य काल में शक्ति देवी के मन्दिर, उसके उपासक एवं उसकी उपासना से सम्बन्धित शिलालेख लगभग सम्पूर्ण भारत से प्राप्त होते हैं।

राजा अपने सैनिक अभियानों की सफलता के लिए शक्त्युपासना को संरक्षण प्रदान करते थे। इस उपासना पर अधिकतर तांत्रिक प्रभाव था, जब कि मूर्त्तियाँ के वर्णन, पुराणों के वर्णन से पूर्णतया साम्य रखते हैं। उग्र और सौम्य दोनों रूप में शक्ति की पूजा की जाती थी। इससे प्रतीत होता है कि यद्यपि शक्ति की उपासना प्रत्यक्ष रूप से इतिहास के सभी कालों में होती रही है, तथापि भारतीय इतिहास के पूर्व मध्यकाल एवं मध्यकाल में इसने उल्लेखनीय लोकप्रियता प्राप्त की। इस अवधि के दौरान शक्त्युपासना को समाज में बड़े ही सम्मान की दृष्टि से देखा जाता था।

---

1. गंगा गोल्डेन जुबली म्यूजियम, बीकानेर
2. जोधपुर म्यूजियम।

अध्याय 4

पुराणों में शक्ति की अवधारणा

पुराणों में शक्ति की बहुत स्तुति की गई है। पुराणों में सभी स्थानीय देवियों का सर्वोच्च देवी के साथ साहचर्य है। वह सर्वोच्च देवी, सृष्टि का प्रारम्भिक स्रोत-सर्वव्यापक (सर्वप्रचलित) मातृ-सिद्धान्त का स्वरूप है। यही मातृ-सिद्धान्त वैष्णव धर्म में विष्णु की पत्नी एवं शैव धर्म में शिव की पत्नी के रूप में परिणत हो गई, किन्तु शाक्त धर्म में वह सर्वोच्च देवी की अवतार है। ब्रह्माण्ड में वह सभी कुछ है। ब्रह्मा, विष्णु और महेश की स्रष्टा भी वही है। वे सब (ब्रह्मादि) उनके अधीनस्थ हैं। मार्कण्डेय पुराण, देवी भागवत पुराण एवं अन्य शाक्त पुराणों में देवी का माहात्म्य अपने चरम रूप में उद्घाटित हुआ है। शक्ति की विभिन्न अवधारणाओं के क्रमिक विकास के बारे में उनमें महत्वपूर्ण सूचनाएँ भी भरी पड़ी हैं।

प्रारम्भिक पुराणों के साक्ष्य के आधार पर कहा जा सकता है कि शक्ति और शिव के बीच सम्बन्ध काफी घनिष्ठ हो गया था। शिव को छोड़कर दक्ष के यज्ञ-ध्वंश की कहानी से तथा सती के द्वारा आत्म दाह करने के बाद दक्ष का सर्वनाश-इस सम्बन्ध में एक अच्छा उदाहरण है। बहुत ही मामूली अन्तर के साथ दक्ष की यह कहानी प्रायः सभी पुराणों में वर्णित है। अन्ततः ब्राह्मण-पुरोहितों को भी शिव-शक्ति की पूजा को महत्व देना पड़ा।

मार्कण्डेय पुराण (रचनाकाल तीसरी से पांचवीं शताब्दी के बीच) के देवी माहात्म्य खण्ड में शाक्त सिद्धान्तों की व्याख्या की गई है। वह सम्पूर्ण जगत् की हेतु (कारण) है, वही सब का आश्रय है तथा सभी देवताओं की नियन्ता है। वह दुर्गा, श्री और गौरी है। वह देवताओं को

वरदान देती हुई उन्हें आश्वस्त करती है कि जब कभी भी दानवों का अत्याचार बढ़ेगा, वह हमेशा अवतार लेगी और विश्व को उनके अत्याचार से मुक्त कराएगी।

मार्कण्डेय पुराण में उसके भीमा, भ्रामरी रक्तदन्तिका, शताक्षी, गौरी और शाकम्भरी रूप पूर्णरूपेण विकसित हैं। दुर्गा अगम्य क्षेत्रों से सम्बद्ध है। मौलिक रूप से उसकी कल्पना दुर्गों (किलों) की संरक्षिका के रूप में की गई है। व्युत्पत्तिमूलक आधार पर उसके नाम की एक विलक्षण व्याख्या प्रस्तुत की गई है। वह यह कि 'दुर्ग' नामक राक्षस का संहार करने के कारण उसे दुर्गा कहा जाता है।

इस पुराण में देवी की प्रमुख-रूप से प्रतिष्ठा युद्धदेवी के रूप में की गई है। वह अपने साधकों को रणभूमि में न केवल विजय और सफलता प्रदान करती है, अपितु जगत् को दानवों के उत्पीड़न से मुक्त करती है। महिषासुर के साथ उसका युद्ध काफी प्रसिद्ध हुआ जिसकी पुष्टि असंख्य महिषमर्दिनी मूर्तियों की प्राप्ति से होती है। यह उपाख्यान एक सर्वव्यापक शक्ति के अवतरण के रूप में देवी की शाक्त-अवधारणाओं की एक सुन्दर रूप-रेखा प्रस्तुत करती है। देवी की स्वरूप अवधारणा सभी देवताओं की शक्ति से उसकी सृष्टि तथा विभिन्न देवताओं के द्वारा प्रदत्त आभूषण एवं अस्त्र-शस्त्र से सजा-सँवरा है। वह शाक्तों में काफी लोकप्रिय हो गई। परवर्ती पुराणों में इसका विस्तार से प्रतिपादन किया गया है। पौराणिक शक्तिवाद में सामूहिक शक्ति की अवधारणा–देवताओं की उर्जा सन्निहित है। यह उर्जा लोगों और भक्तों के लिए आनन्द, सुरक्षा एवं समृद्धि सुलभ करने में सक्षम एवं समर्थ हैं।

यह देवी शक्ति वैदिक संस्कृति के साथ प्रगाढ़ रूप से सम्बद्ध रही है। ऋग्वेद की तीन देवियों–अदिति, उषस् एवं सरस्वती का विकास, पौराणिक चिन्तन में सम्भवतः महाकाली, महालक्ष्मी एवं महासरस्वती के रूप में हुआ। जैसा कि हम पुराणों में पाते हैं कि शक्ति की अवधारणा महाशक्ति की सर्जनात्मक क्षमता के साथ सम्बद्ध है। जबकि तन्त्रों एवं प्रारम्भिक अवस्थाओं में हम उसे एक विध्वंसक देवी के रूप में पाते हैं। पुराणों मे

देवी की सर्वोच्च ब्रह्म या परमात्मा की अवस्थिति तक प्रतिष्ठापित है। उसकी कल्पना ब्रह्म की शक्ति के रूप में की गई है। साथ ही उसका निरूपण ब्रह्म के साथ भी है। शाक्त पुराणों में हिन्दू धर्म की मौलिक आस्थाओं को शक्ति के रूप में सूत्रबद्ध किया गया है। वह यह है कि केवल एक ही सर्वव्यापक एवं सर्वोच्च सत्ता है, जो सभी का स्रोत एवं आश्रय है। सम्पूर्ण पौराणिक साहित्य में पुरुष (शिव) एवं स्त्री (शक्ति) उर्जा का अद्वैत स्वरूप (चरित्र) एक आधारभूत अवधारणा को जन्म देता है। महाशक्ति, जो निरपेक्ष दृष्टि से यद्यपि एक ही है, इस प्रतीयमान् जगत् की सृष्टि के लिए दो रूपों की कल्पना करती है।

शक्तिवाद् शक्ति की उपासना है। और वह स्त्री रूप में विश्व के सृजन एवं पुनरुत्पत्ति में प्रधान कारक के रूप में मान्य है।[1] सामान्यतया 'शक्ति' पद से दिव्यता (स्त्रीत्व) का बोध होता है। 'शक्ति' देवता[2] की विशेषकर शिव को बल प्रदान करने वाली (बल प्रदायिनी) शक्ति के अर्थ में प्रयुक्त होता है अथवा वह शिव की पत्नी है। उसकी पूजा विभिन्न नामों से की जाती है जिनमें देवी, दुर्गा एवं काली प्रसिद्ध हैं।[3] पुराणों में शक्ति को सर्वोच्च स्थान मिला है, जहाँ उसे त्रिदेव में परिगणित किया गया है। यथा—विष्णु, शिव एवं शक्ति। पौराणिक देवकुल की एक महत्वपूर्ण सदस्या है—शक्ति। शक्ति की अवधारणा न केवल वेदों में पाई जाती है, अपितु इसकी प्राचीनता सिन्धु-सभ्यता के अवशेषों से भी सिद्ध हो चुकी है।[4] उत्तरवैदिक साहित्य एवं महाकाव्यों से गुजरती हुई शक्ति पूजा ने पुराणों एवं उपपुराणों में एक प्रभावशाली भूमिका ग्रहण की।[5] इस समय तक शक्ति जगत्-माता के रूप में उपासना की प्रमुख आराध्य देवता बन चुकी थी। प्रतीत होता है कि शक्ति एक महत्वपूर्ण एवं सर्वोच्च देवी हो गई थी।

---

1. देवी भागवत् पुराण - I 219-22
2. हलायुधकोश - पृष्ठ 648 मेदिनी कोश - पृष्ठ 61
3. इलियट - हिन्दुज्म एण्ड बुद्धिज्म - Vol. II पृष्ठ 274
4. मैके-अर्ली इण्डस सिविलाइजेशन - II संस्करण, पृष्ठ 54
5. दीक्षितार, ललिता कल्ट, पृष्ठ 30

कई पुराणों में यथा–देवी भागवत पुराण, देवी पुराण, कालिका पुराण एवं महाभागवत पुराण में शक्ति को विष्णु एवं शिव से भी अधिक महत्ता प्रदान की गई है।

पुराणों एवं शाक्त उपनिषदों में उसे सर्वोच्च स्थान प्राप्त है तथा वह विभिन्न कर्मकाण्डीय एवं दार्शनिक पहलुओं से सम्बद्ध है। सगुण रूप में अपने पति शिव की भांति उसके स्वरूप के दो पहलू हैं–सौम्य एवं क्रूर/ (श्वेत एवं श्याम)[1] प्रथम पहलू शक्ति की सृजनात्मक क्षमता का द्योतक है तथा द्वितीय विध्वंसकारिणी शक्ति–युद्धदेवी का परिचायक है।[2]

मार्कण्डेय पुराण में देवी चण्डी का वर्णन है, जिसमें दिव्यशक्ति के रूप में देवी के विभिन्न पहलुओं का एक समेकित चिन्तन मिलता है। यहाँ शक्ति की पहचान पर्वत से सम्बन्धित देवी उमा या पार्वती से की गई थी।[3] प्राचीन भारतीय मातृदेवी हमेशा एक पर्वत देवी ही मानी गई थी।

सभी महापुराणों में उसकी प्रभावशाली अनुकम्पा की चर्चा है तथा उसे सभी देवताओं में सर्वोच्च स्थान प्राप्त है। कभी-कभी हम पाते हैं कि पुराणकारों ने उसकी प्रशंसा ब्रह्म के रूप में की है, जबकि अन्य कई पुराणों ने विशेषरूप से कहा है कि वह शक्तिमान शिव की शक्ति है। कुछ पुराणों में उसे विष्णु से सम्बद्ध–वैष्णवी शक्ति कहा गया है। अधिकांश पुराणों में उसके दयालु स्वरूप को चित्रित किया गया है, जो सर्वदा लोगों के हित के लिए सक्रिय है। वह अपने भक्तों के लिए उनकी माँ की भांति स्नेहमयी है तथा हमेशा वरदा एवं अभय-मुद्रा में दिखाई पड़ती है। वह उनके सभी कष्टों एवं भयों को दूर करती है। साथ ही उनकी सम्पूर्ण मनोकामनाओं को पूर्ण करती है। वह भुक्ति–आनन्द और मुक्ति–अन्तिम मोक्ष–दोनों प्रदान करती है। इसलिए पुराण इस जीवन में उन्नति एवं आध्यात्मिक विकास के लिए शक्ति की उपासना का निर्देश करते हैं।

---

1. देवी पुराण - पाशांकुशधरां सौम्यां वरदाभयहस्तकाम्।
2. सप्तशती - XI -41 55
3. वही - XI-51, देवी पुराण - 5/6

आध्यात्मिक विकास का अभिप्राय आत्मा का देवी या परा-शक्ति के साथ तादात्म्य से है।

सौम्यरूप में शक्ति आकांक्षाओं को पूर्ण करने वाली कही जाती है तथा अपने भक्तों के लिए उसमें माँ जैसा स्नेह है।[1] वह सौभाग्य प्रदात्री है।[2] जगत्‌की वही संरक्षिका तथा सभी मंगलों से पूर्ण है। जीवों की आन्तरिक नियन्त्री भी वही है। वास्तव में विश्व ही उसका रूप है।[3]

मार्कण्डेय पुराण में वह एक योद्धा-देवी के रूप में चित्रित है। प्रसंग यूं है कि स्वर्ग के निवासियों के लिए दानव गण अत्यन्त कठिन चुनौती बन चले थे। अतः इस निर्णायक क्षण में दानवों का सर्वनाश करने के लिए विभिन्न साधनों का उपयोग करके वह पृथ्वी पर अवतार लेकर आई है।[4]

देवी पुराण में देवी मुख्यतया युद्धदेवी के रूप में प्रगट होती है।[5] वह आद्या शक्ति है और शिवा देवी से इतर नहीं है।[6] चामुण्डा के रूप में उसने विष्णु का जीवन बचाया। कहा जाता है कि वह सर्वशक्तिमती है—विश्व का सृजन, पालन और संहार करने में समर्थ है।[7] उसका वर्णन कालाग्नि की प्रज्वलित ज्योति के रूप में है।[8] देवताओं, दानवों मनुष्यों और अर्धदैवी सत्ताओं के साथ-साथ पशु-पक्षियों एवं जड़पदार्थों की स्रष्ट्रा एवं नियन्ता भी वही है।[9]

पुराणों के अध्ययन से भारत में शक्तिपूजा के प्रसार का पता चलता

---

1. देवी भागवत - X , 1/4
2. वही - X, 1/10
3. वही - X 1/13-16
4. सप्तशती - XII/ 28-30,23, 15-19.
5. हाजरा आर. सी., स्ट्डीज इन दी उपपुराणाज - Vol.II पृष्ठ 90
6. देवी पुराण - 5/60
7. वही
8. वही 6/11
9. वही 6/1

है। पुराणों के अनुसार लोग इतने उत्साहपूर्ण थे कि प्रत्येक गाँव में देवी का मन्दिर बनवाया गया था तथा लोग बहुत उत्सुकता से देवी के दर्शन के लिए जाते थे।[1] शक्ति ही वह देवी है, जिसे लोगों ने उपने हृदय में जगह दी एवं अगाध भक्ति से उसकी उपासना करते थे।[2]

वे लोग हवन-यजन, नवरात्र-पूजा एवं स्तोत्र-पाठ मन्त्रोच्चारण के साथ देवी की उपासना करने में व्यस्त थे। वे देवी के प्रति पूर्णरूप से समर्पित थे। इस उपासना को राजाओं एवं उच्चतर अधिकारियों का संरक्षण प्राप्त था।[3] इन सभी से यह सिद्ध होता है कि शक्त्युपासना पद्धति पौराणिक युग में बहुत लोकप्रिय थी। लोग शक्ति के विभिन्न रूपों की पूजा किया करते थे। विशेषकर ग्रामीण पृष्ठभूमि की स्त्रियाँ सन्तान प्राप्ति तथा युद्ध में बाहरी दुश्मनों से एवं विपत्तियों तथा रोगों से अपने पतियों तथा सन्तान की सुरक्षा के लिए शक्ति की उपासना किया करती थीं। शक्ति के विषय में कहा जाता है कि वह हमेशा मंगलस्वरूपी है तथा लोगों को अच्छाई प्रदान करती थी।[4] उसकी स्तुति इस प्रकार की गई।

सर्वमंगलमांगल्ये शिवे सर्वार्थं साधिके।
शरण्ये त्र्यम्बके गौरी नारायणि नमोस्तुतं॥

---

1. देवी भागवत - III /25-40. कालिका पुराण 60/23-45
2. देवी भागवत - III/ 25/ 41-44 कालिका पुराण 60/4-13.
3. देवी भागवत पुराण - III/25/35-46
4. सप्तशती अ. XI

अध्याय 5

श्री सूक्त में श्री या लक्ष्मी की अवधारणा

श्री सूक्त (ऋग्वेद के पंचम मण्डल का एक परिशिष्ट) वैदिकसाहित्य का एक महत्वपूर्ण अंश है, जिसमें श्री की अवधारणा का प्रारम्भिक विकास दिखाया गया है। यह अधिकांश उन विशिष्ट विशेषताओं को बताता है, जिनसे देवी उत्तरवर्ती काल में विकसित रूप में संयुक्त होती है। हम निश्चित रूप से कह सकते हैं कि श्रीसूक्त की रचना उस समय की गई थी जब यजुर्वेद और ब्राह्मण ग्रन्थों की रचना और उनका संकलन हो चुका था।

श्रीसूक्त की विभिन्न पुस्तकों में श्लोकों (मंत्रों) की संख्या में अन्तर है। मन्त्रों की कुल संख्या 29 है, किन्तु केवल 15 मन्त्रों के ऊपर टिप्पणी की गई है। अतः इस कारण विद्वानों की मान्यता है कि प्रथम 15 मन्त्र ही मौलिक हैं। शेष मन्त्र बाद में जोड़ दिए गए प्रतीत होते हैं। प्रारम्भिक धार्मिक साहित्य से पता चलता है कि इस श्रीसूक्त का प्रायः पठन-पाठन, श्रवण, टीका-टिप्पणी एवं उद्धरण दिया जाता था। बौधायन गृह्य सूत्र[1] एवं मैत्रायनीय मानव गृह्य सूत्र[2] हमें बताता है कि इस सूत्र का उपयोग षष्ठीकल्प (देवी षष्ठी की पूजा) में किया जाता था।

पुराणों[3] एवं धार्मिक ग्रन्थ[4] में श्री लक्ष्मी की पूजा एवं उसकी प्रतिमा के पवित्रीकरण से सम्बन्धित सभी कर्मकाण्डो के लिए इस सूक्त के उपयोग

---

1. बौधायन गृह्य सूत्र - III 12 , III-5, I-23 एवं ऋग्विधान II. 18-19
2. श्री मैत्रायणीय मानव गृह्य सूत्र - I 10,15 IV 90
3. विष्णुपुराण - I-1 100 पद्म पुराण, सृष्टिखण्ड - 4.60 अग्निपुराण - 41/8, 62/ 3-6
4. तैत्तिरीय आरण्यक X/1 1/43 (गन्ध द्वारा आदि प्रयुक्त है) बौधायन गृह्य सूत्र - II/5, IV -20

का विधान करते हैं। इस प्रकार यह ज्ञात होता है कि प्राचीन काल से ही श्रीलक्ष्मी की कर्मकाण्डीय पूजा एवं विष्णु के साथ उसकी सम्बद्धता का प्रचलन था।[1] श्रीलक्ष्मी के प्रतिमा के विकास में भी इस सूक्त की प्रमुख भूमिका है। अधिकांश मूर्ति सम्बन्धी उसकी विशेषताएँ इसी सुविख्यात लघु पुस्तिका से विकसित की गई प्रतीत होती है।

इस सूक्त में हवन की अग्नि, जातवेदस् से देवी लक्ष्मी का आह्वान किया गया है। उद्देश्य है–स्वर्ण, पालतू पशु, स्वास्थ्य, धन-धान्य, अच्छी फसल, सौन्दर्य और कीर्ति– वह सब कुछ जिसकी मनुष्य आकांक्षा और आशा करता है, वह अपने भक्तों को प्रदान करें। मंत्र में वह कमल के फूल से सम्बद्ध है।[2] आध्यात्मिक धारणाओं की सर्वश्रेष्ठ एवं शुद्धतम अभिव्यक्ति कमल के द्वारा मानी जाती है। यह सच्ची पूर्णता को दर्शाता है तथा यह अष्ट मंगलों या सौभाग्य (शुभ के प्रतीकों) में से एक है। इस प्रकार उसका वर्णन कमल के रूप में है, रंग कमल जैसा है, वह कमल पर बैठी हुई है, कमल की ही माला पहने हुई है और इसलिए उसे पद्मिनी कहा जाता है, जो कि स्त्रीत्व की सर्वश्रेष्ठ पदवी है।

चौथे मंत्र में उसे पद्मस्थिता (कमल पर आरूढ़) कहकर सम्बोधित किया गया है और कमल के रूप में उसका आसन या पीठिका (आधार) वाले छवि के विकास के लिए शायद यही सम्बोधन जिम्मेवार हो सकता है–(पद्मासना, पद्मपीठा)[3]। वर्तमान समय में अधिकांश देवी-देवता कमल पर बैठे हुए ही चित्रित किए जाते हैं, किन्तु श्री लक्ष्मी ही प्रथम देवी है जिसे नियमित रूप से 'पद्मपीठ' या 'पद्मासन' के साथ दिखाया गया है। गुप्तकाल के दौरान यह पद्मासन अधिकांश देवी-देवताओं के साथ परम्परागत हो रहे थे।[4]

---

1. अहिर्बुध्न्य संहिता - 59/40-42
2. श्री सूक्त - 4
3. वही
1. कुमारस्वामी ए. के. यक्षाज - II - पृष्ठ 57 (तृतीय शताब्दी ई. पू. के मथुरा के सिक्कों में लक्ष्मी कमल पर आसीन है। पांचाल क्वाइन्स, तक्षशिला क्वाइन्स (एलेन्स C.C.A.T.) श्री लक्ष्मी - E.A. Vol. I 1929 पृष्ठ 179 n. 81

कमल का महत्व

शतपथ ब्राह्मण एवं अन्य ग्रन्थों में जल को दर्शाते हुए कमल का एक प्रतीकात्मक महत्व स्थापित हो चुका था।

कमल का महत्त्व : शतपथ एवं अन्य ग्रन्थों में कमल ओर जल साथ ही दर्शाए हैं। कमल का अभिप्राय जल है तथा यह पृथ्वी उसका पत्ता। जैसे पत्ता जल पर फैल जाता है, वैसे ही पृथ्वी भी जल पर फैली हुई है।[1] अन्यत्र कमल के पत्ते को जल कहा गया है। यजुर्वेद में कमल के बारे में कहा गया है कि वह जल का पृष्ठ भाग है।[2] इस प्रकार उक्त रूप में जल का मौलिक चिन्तन किया गया है जो कि उत्तरवैदिक साहित्य एवं प्रारम्भिक मूर्तिकला या चित्रकला में पाया जाता है। यह सभी प्रकार के जीवन विशेषकर पृथ्वी के जीवन के लिए–चरम सत्य एवं भौतिक दोनों ही दृष्टिकोण से एक समर्थन हैं, जहाँ से आसन और पीठ का स्वाभाविक उपयोग शुरू होता है।[3]

ठीक इसी तरह का विचार उत्तर वैदिक साहित्य में मिलता है। इसी प्रकार 'हरिवंश[4] जिसमें कमल (पुष्कर) से हर प्रकार के अस्तित्व के उद्‌गम का वर्णन है। इसका अनुमोदन देवी पृथ्वी के आसन के रूप में करता है। कमल में सभी देवताओं एवं पूर्ण तथा सुन्दर सत्ताओं का निवास है। इसने बाह्यदलपुज या अन्तरतम भाग से देवता के अमृत के समान एक तरल पदार्थ निकलता है। इस प्रकार सर्वोच्च सत्ता ने कमल की रचना विश्व को समाविष्ट करने के लिए किया है।[5] अतुलनीय विश्व के स्वामी ने सम्भवतः इसकी रचना की है या बल्कि यह उनके ही शरीर से उत्पन्न हुए हैं। यह कमल ही जगत् स्वरूप था।[6]

---

1. शतपथ ब्रह्मण - VII 4.1.8.
2. वही - X 5, 2,6
3. यजुर्वेद - IV -1 ,3,1 , II/ 8/ 1-2
4. मोतीचन्द्र, ऑवर लेडी ऑफ ब्यूटी एण्ड एबनडेन्स- 'पद्मश्री' जर्नल ऑफ यू. पी. हिस्टोरिकल सोसाइटी Vol. XXI 1948 पृष्ठ 26
5. हरिवंश - III/12
6. गोण्डा, जे. 'आस्पेक्ट्स ऑफ अर्ली विष्णुइज्म - पृष्ठ 6 104 n. 52

अध्याय 6

शंकराचार्य एवं शक्ति

प्रतिष्ठित वेदान्तवादी शंकराचार्य शक्ति के उत्साही उपासक थे। वे उमा हैमवती की व्याख्या ब्रह्मविद्या के रूप में करते हैं। शक्ति सम्बन्धी उनकी अवधारणा अत्यन्त उदात्त है। उनके अनुसार शक्ति भगवान् शिव की अभिन्न भाग हैं। वेदान्त सूत्रों पर अपने भाष्य में वे शक्ति शब्द की चर्चा करते हैं। ईश्वरत्व की उनकी अवधारणा का आधार है शक्ति की पूर्णता। 'सर्वशक्ति' विशेषण केवल ब्रह्म के लिए ही प्रयोज्य हैं यहाँ तक कि ब्रह्म से सम्बन्धित माया भी अपवाद-स्वरूप शक्ति के रूप में जानी जाती है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि महान आचार्य शंकर अपनी आत्मा एवं शब्दों के द्वारा शक्ति के भक्त थे।

शक्ति देवी के प्रति उनकी श्रद्धा का प्रमाण उनके ग्रन्थ प्रपंचसार एवं सौन्दर्यलहरी में भरे पड़े हैं। जब वे ब्रह्मविद्या या कभी-कभी उमा और काली[1] का वर्णन करते हैं तो शक्ति के प्रति उनकी निष्ठा स्पष्टतः दिखाई पड़ती है। वे उमा का वर्णन ब्रह्मविद्या के रूप में करते हैं। हैमवती का विवेचन वे स्वर्णा-भूषण से सजी-सँवरी एवं हिमालय की सुविख्यात पुत्री के रूप में करते हैं। वह शाश्वत रूप से सर्वज्ञ देवी शिव के साहचर्य में रहती है। इस प्रकार शंकराचार्य के साहित्य[1] का सूक्ष्म निरीक्षण करने पर यह रहस्य प्रकट होता है कि यद्यपि वे एक महान् वेदान्ती थे, तथापि वे आन्तरिक रूप से शिव और शक्ति के उपासक भी थे। शक्ति सम्बन्धी उनकी अवधारणा अत्यन्त उदात्त है क्योंकि उन्होंने शक्ति को शिव का अवियोज्य (अपृथक्) भाग माना है। अपनी सौन्दर्यलहरी में वह शक्ति के प्रति अपनी प्रतिबद्धता स्पष्ट करते हैं तथा यहाँ शक्ति की अपेक्षा

---

1. शांकरभाष्य-केनोपनिषद् - 3

शिव का स्थान गौण हैं। शंकर का कहना है कि शक्ति के बिना शिव की गति सम्भव नहीं है।[1] शैवपुराणों में तन्त्रों का चरमोत्कर्ष शिव और शक्ति की शाश्वत एकता है। तन्त्रों में शक्ति को विशेष महत्व दिया गया है।

त्रिपुरासुन्दरी की स्तूति में एक मन्त्र में शंकराचार्य मद्य, छः चक्रों एवं कदम्ब वन का उद्धरण देते हैं। त्रिपुरासुन्दरी त्रिनेत्र देव शंकर की पत्नी है। वह कदम्बवन में रहती है। योगियों के छः चक्रों में उसका निवास है तथा स्वर्णथाली में बैठी हुई है।[2] पूर्णव्यक्ति के हृदय में रक्त के दबाव को वह हल्का करना चाहती है। उसका सौन्दर्य फूलों को भी मात करता है तथा उसके सिर पर पूर्णिमा का चाँद है। ऐसी देवी का मैं आश्रय चाहता हूँ।[1] त्रिपुरासुन्दरी का सुन्दर वर्णन तांत्रिक साधना में भी दृष्टिगोचर होता है। त्रिपुरा का ऐसा ही गूढ़ वर्णन शंकर इस प्रकार करते हैं–"उसका ध्यान तब करना चाहिए, जब वह अपनी यौवन से प्रथम बार कौंधी हो, उसके दोनों हाथ मद्य के पात्रों में डूबे हुए हों, उसकी आँखें मद्य से मस्त होकर चढ़ी हों, तथा उसके बाल अस्त-व्यस्त हो गए हों।[3] लाल वस्त्रों, आभूषणों एवं हारों से सजी-संवरी वह सभी व्यक्तियों के लिए मोहिनी रूपा है।[4]

इस स्तोत्र में हृदय का एक स्वाभाविक उद्‌गार व्यक्त हुआ है जिसमें देवी माता से क्षमा प्रदानार्थ अनुरोध किया गया है। यहाँ कहा गया है कि

---

1. शिवः शक्त्या युक्तो यदि भवति शक्तः
   प्रभवितुम् - सौन्दर्यलहरी।
2. त्रिपुरसुन्दर्याष्टकम् - V. 4
   कदम्बवनमध्यगां कनक मंडलोपरिस्थिताम्।
   षडम्बुरुध्वसिनीं सततसिद्धसौदामिनीम्।।
   विडम्बितजपारुचिं विकचचन्द्रचूडामणिम्।
   त्रिलोचनकुटुम्बिनीं त्रिपुरसुन्दरिमाश्रये।।
3. वही - V. 6
   स्मरेत्प्रथमपुष्पिणीं रुधिरबिन्दुनीलाम्बराम्।
   गृहीतमधुपुत्रिकां मधुविचूर्णनेत्राम्।।
4. वही - श्लोक 7
   अशेषजनमोहिनीमरुणामाला भूषणाम्बराम्।

उपासक को रहस्यमय मन्त्र का ज्ञान नहीं है, न ही उसे यन्त्र, मुद्रा या वन्दना के स्तोत्रों आदि का पता है। फिर भी उसे दृढ विश्वास है कि यदि वह देवी का आश्रय पा लेता है तो वह इसकी सभी विपत्तियों को नष्ट कर देगी।[1] वह अनुनय विनय करता है कि 'मैं अपने दुर्भाग्य, दीनता या आलस्य अथवा तुम्हारा उपासक न होने की वजह से तुम्हारे चरणों से दूर हो गया हूँ। ओ माँ! तुम्हें निश्चय ही माफ कर देना चाहिए। एक बुरा पुत्र तो जन्म ले सकता है, किन्तु बुरी माता कहीं भी नहीं होती।[2] पुनः देवी के सम्मान में (श्रद्धा में) उपासक यहाँ तक प्रार्थना करता है कि पशुपति, जो कि शव की चिता की राख अपने अङ्गों में लगाए हुए हैं, जिन्होंने विषपान किए हैं, चारों दिशाएं उनके वस्त्र हैं तथा कपालों की मुण्डमाला धारण किए हुए हैं। भवानी के साथ विवाह होने के कारण ही वह सकल जगत् का स्वामी कहलाता है।[3] उपासक को न तो मुक्ति की आकांक्षा है और न ही ज्ञान और धन प्राप्त करने की। उसकी चाहत तो बस इतनी ही है कि वह देवी का नाम जाप करते हुए जीवन गुजार दे।[4]

इस क्रम में जगत् हो कि ब्रह्म, शक्ति के उस पहलू को जो कि हमें निषेध का सिद्धान्त सिखलाती है, की प्रक्रिया के अवतरण के द्वारा अपने परम स्वरूप को सीमित करता है।[1] वह ऐसा होने देता है—मानो

1. न मन्त्रं नो यन्त्रं तदपि च न जाने स्तुतिमहो
   न चाह्वानं ध्यानं तदपि च न जाने स्तुतिकथाः।
   न जाने मुद्रास्ते तदपि च न जाने विलपनम्
   परं जाने मातस्त्वदनुस्मरणं क्लेशहरणम्।।
   देव्यपराध क्षमापण-स्तोत्र।
2. वही - श्लोक 2
   कुपुत्रो जायेत क्वचिदपि कुमाता न भवति।
3. वही - श्लोक 7
   चिता भस्मालेपो गरलमशनं दिक्पटधरो
   जटाधारी कंठे भुजगपतिहारी पशुपतिः।
   कपाली भूतेशो भजति जगदीशैकपदवीम्।
   भवानि त्वत्पाणिग्रहणपरिपाटी फलमिदम्।।
4. वही - श्लोक 8

अनुभवातीत एवं पूर्णत्व के रूप में उसका स्वरूप अपने विचार से गायब होता है। इसलिए वह एक अभाव अनुभव कर सकता है। सृष्टिप्रक्रिया में यह शक्ति आच्छादन के एक बल के रूप में कार्य करती है। इस रूप में शक्ति को तकनीकी पदावली में तिरोधान या माया कहा जाता है। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि त्रिकव्यवस्था में माया की अवधारणा वेदान्त की अवधारणा से पर्याप्त रूप में भिन्न है। यहाँ इसे वह शक्ति समझा जाता है जो शिव के वास्तविक स्वरूप की विस्मरणशीलता या भुलक्कड़पन को उत्पन्न करती है, जबकि वेदान्त में यह केवल माया है।[2] जगत् के आविर्भाव की यह पूर्ण शर्त है।

शक्तिवाद में आविर्भूत तत्वों को 36 कोटियों में बाँटा गया है। पुरुष से लेकर पृथ्वी तक 25 तत्व कुछ विभिन्नताओं के साथ वही हैं, जो सांख्य दर्शन में हैं। 26वां तत्व माया वेदान्त से लिया गया है। शेष दस तत्व जो 36 तत्वों में प्रथम दस हैं, उनमें से 5 तो परम सत्ता के पहलू हैं। शेष पाँच व्यक्तिगत सत्ता (जीव) की सीमा या अवसान हैं।

37वाँ तत्त्व शिवतत्त्व होता है जो कि स्वभावतः आनन्द से पूर्ण हैं तथा अपने आप में पूर्ण हैं। अव्यक्त जगत्-उसमें यह विचार या अनुभव की भाँति रहता है।

अगली कोटि शक्ति तत्त्व की है। इसे दूसरा तत्त्व कहा जा सकता है। कारण आविर्भाव (सृष्टि) के समय यह सर्वदा शिव के साथ होती है (कारण, यह शिव के साथ ही आविर्भूत होती है। वास्तव में शक्ति के संचालन की वजह से ही शिव का आविर्भाव सम्भव हो पाता हैं। शक्ति का परिगणन अलग रूप से किया जाता है तो वास्तव में यह अपने आनन्दात्मक पहलू की आविर्भूत (व्यक्त) तत्त्व के रूप में जानी जाती है। यह पहलू है आनन्द का और सर्वोच्च आत्मसंतुष्टि का। शक्ति तत्त्व

1. Par, San, com P 10
   निषेधव्यापाररूपाया पारमेश्वरी शक्तिः।
2. Per Sam
   परमं यत् स्वातन्त्र्यं दुर्घटसम्पादनं महेशस्य दैवीमायाशक्तिः स्वात्मावरणं शिवस्यैतत, न पुनः ब्रह्मवादिनामिव काचित्माया उपपद्यते।

में सत्ता का केवल अनुभव है। जिसे **'विश्वं भवामि'** (इच्छाशक्ति) के रूप में कहा जा सकता है और जिसका वर्णन जगत् के बीज के रूप में शिव के चैतन्य में एवं सभी विचारों के बीजभूमि के रूप में किया गया है। इसका वर्णन शून्यता या महाशून्यता के रूप में भी किया गया है क्योंकि इस अवस्था में इससे कुछ भी आविर्भूत नहीं होता।[1]

दार्शनिक धरातल पर उतरते हुए हम यह देखकर अचम्भे में पड़ जाते हैं कि सांख्य दर्शन में शक्ति की महत्वपूर्ण स्थिति हैं। शंकर हमारे विश्वास को दृढ़ करते हुए कहता है कि सभी कुछ शक्ति से सम्पन्न है। उनका यह भी विश्वास है कि शक्ति के अनेक रूप हैं। उन्होंने कहा है कि शक्ति पदार्थ से ही सम्बद्ध है तथा वह ब्रह्म का भी अपृथक् गुण हैं।[2] उन्होंने शक्ति के आनुभाविक एवं अनुभवातीत पहलुओं को स्वीकारा।

मातृदेवी की प्रेमपूर्ण एवं ओजस्वी अवधारणा भारत के दो महान् सांस्कृतिक धरोहरों भक्ति आन्दोलन एवं शंकर के सुधारों के बीच एक सुरम्य पुल का निर्माण करती है।[3] मातृदेवी की उपासना के प्रति शंकर के योगदान से ही विश्लेषण का प्रारम्भ करना उचित होगा। विश्लेषण के मुख्य बिन्दुओं को सारांशतः इस प्रकार कहा जा सकता है–(क) महादेवी के कुछ अवशेष एवं उसकी उपासना क्रम भारत के भू-भागों में फैला हुआ था। हालाँकि शक्तिपूजा प्राचीन विश्व के अन्य अनेक भागों में प्रचलित थी, किन्तु उनमें मातृदेवी की एकीकृत एवं जटिल अवधारणा न थी। (ख) शंकर ने विकराल देवियों की उपासना के प्रारम्भिक रूपों का सुधार किया तथा एक महान् सामान्य महादेवी की उपासना-पद्धति को स्थापित किया। (ग) उस पर उभरते हुए तांत्रिक सम्प्रदाय, भक्ति आन्दोलन के तादात्म्य, तकनीकी एवं निर्णायक रूप से अपनी माँ के प्रति उसकी अगाध श्रद्धा का प्रभाव पड़ा एवं उसे इन सबसे सहायता मिली। (घ) उनके सुधारों

---

1. S.T. T.S V.2
2. Par Sam V 14 41-22
   तत्रैव भगवतः चिदूपाय आनन्दरूपा विश्वं भवामि इति परामृशता विश्वभाव स्वभावमयी संविदैव किंचिद्च्छूनतारूपा एवं भावनां बीजभूमि इयं शक्तिः।
3. शांकर भाष्य., ऑन वेदान्त सूत्र - 2.1.37

एवं मातृ उपासना के पुनर्जीवन ने चिन्तकों एवं नेताओं की विशाल परम्परा पर अपना दीर्घ प्रभाव छोड़ा।

यहाँ यह उल्लेखनीय है कि मातृदेवी की उपासना हिन्दू सभ्यता[1] के लिए कोई नई बात नहीं हैं। यह प्रथा विश्व की प्राचीन सभ्यताओं में प्रचलित रही है। यथा–मेसोपोटामिया घाटी, मध्य–एशिया, मिश्र, यूनान एवं मैक्सिको की सभ्यता। विभिन्न गैर ईसाई प्रभावों के कारण ईसाईयत में कुँवारी मैरी की प्रतिष्ठा अक्षुण है।[2] कैथोलिक चर्च में देवता की माँ के रूप में इसका स्थान काफी ऊँचा है तथा वहाँ उसका स्वर्ग में देहिक अवतरण होता है, जबकि प्रोटेस्टेन्ट में उसकी स्थिति एक साधारण नेक माँ की है। इस प्रकार हम देखते हैं कि मातृदेवी की उपासना का व्यापक प्रचलन न केवल विभिन्न प्राचीन सभ्यताओं में था, बल्कि यह यूरोपीय ईसाईधर्म में भी है। हिन्दू देवकुल में–उत्तर के वैदिक आर्यों के बीच,[3] दक्षिण के अनार्यों के बीच[4] तथा समस्त भारत की विभिन्न जनजातियों के बीच देवियों को सम्मानित किया गया। उनमें से केवल कुछ वैदिक काल के बाद के धर्मग्रन्थों में सौम्यरूप वाली हैं। साथ ही कहीं-कहीं उनकी सौम्यता कम भी हुई है।[5] दुर्गा, लक्ष्मी या श्री, उषा, इन्द्राणी, भू एवं अनेक अन्य् देवियों को देवत्व प्रदान किया गया। श्री शुभ (भद्रता) की प्रतीक थी तथा धन प्रदान करने वाली थी। दुर्गा अग्निवर्णा थी तथा तप से प्रदीप्त होती थी। उषा लावण्यमयी थी एवं उनके वक्ष दृढ़ थे। इन्द्राणी भी लावण्यमयी थी किन्तु उसकी पुकार और ललकार विस्तर पर लेटी एक कामिनी की थी। वीरांगना के रूप में कुन्ती या कौशल्या के रूप में कुलीन (उदात्त) या यशोदा के रूप में वात्सल्यमयी कतिपय माताएँ पौराणिक वीराङ्गनाओं के उदाहरण थीं, किन्तु उनकी उपासना कभी नहीं की गई। वास्तव में कौशल्या, यशोदा एवं माया (बुद्ध की माँ) ने क्रमशः राम, कृष्ण और बुद्ध को जन्म

1. पी. कुमार - शक्ति कल्ट इन एनसिण्न्ट इण्डिया - पृष्ठ 2-4
2. ए. जान, मेचग, द मदर ऑफ ओसस इन द न्यू टेस्टामेन्ट - 1975
3. ए. ए. मेक्डॉनल- वैदिक माइथोलॉजी - 124
4. दुर्गासूक्तम् - V. 9
5. इण्डियन कल्चर - V. VIII, जुलाई - सितम्बर, पृष्ठ 66

दिया एवं उसे सांयोगिक ही माना गया किन्तु कुँवारी मैरी की तरह इन माताओं को परमेश्वर की माँ के रूप में विशेष प्रतिष्ठा नहीं मिली, किन्तु पार्वती के सन्दर्भ में यह बात नहीं है। कालिदास के कुमारसम्भवम् से लेकर स्कन्दपुराण[1] आदि काव्यों एवं पुराणों के द्वारा उसे एक सुन्दर, सौम्य एवं शक्तिशाली मातृदेवी के रूप में क्रमशः स्वीकृति प्राप्त हुई।

शंकर से पहले पौराणिक काल में देवी की उपासना-पद्धति पूर्णरूप से विकसित थी। किन्तु उस समय व्यापक ज्ञात देवियाँ मौलिक रूप से विकराल एवं शक्तिशाली थीं। काली जो एक दण्ड देने वाली एवं वध करने वाली माँ थी एवं अपने पति के शरीर पर नृत्य करती थी एवं उपासकों[2] के विशाल समूह में लोकप्रिय थी। उसे प्रसन्न करने का परम उपाय बलिदान था- अपने ही हाथों द्वारा अपने सिर का बलिदान। इस कृत्य के हजारों साक्ष्य मध्यकालीन मूर्तियों में सुरक्षित हैं।[3] देवी लक्ष्मी या श्री देवी का मातृदेवी के रूप में अब तक उद्भव- नहीं हुआ था। जैसा कि बाद के दक्षिण भारतीय वैष्णव धर्म में हुआ है। माँ के रूप में उसके उद्धरण का सूचन करने के लिए पर्याप्त साक्ष्य नहीं हैं। श्रीसूक्तम् में विष्णु के अवियोज्य अंश के रूप में उसका वर्णन वैष्णव धर्म के प्रारम्भिक रूप में ही उसे एक पूर्ण विकसित मातृ देवी के पद तक समुन्नत करने के लिए किया गया था।[4] वहाँ अनेक देवियाँ थीं, कुछ सौम्य थीं, कुछ विकराल थीं। किन्तु अब तक एकीकृत मातृदेवी की प्रभावशालिनी अवधारणा का विकास न हो पाया था।

तमिल प्रदेश में भी कुछ ऐसी ही परिस्थितियाँ थीं। कथाओं एवं गीतों में महान् देवी पत्तिनी या कन्नगी का चित्रण पतिपरायणी, वेदनामयी एवं आदर्श पत्नी के रूप में किया गया था। हिंसा के बिना उसकी उपासना में रहस्यानुष्ठान भी सम्मिलित था। मदुरई के पाण्ड्य राजा ने कन्नगी के पति

---

1. कुमारसंभवम् - I/ स्कन्दपुराण - IV/ 1-22-27
2. कालिका पुराण - 5/5, 9/1-26 पाइने द शक्ताज, पृ. 13
3. पी. कुमार - शक्ति कल्ट इन एन्सिएन्ट इंडिया पृष्ठ - 206
4. श्री सूक्त - V-5

की अपर्याप्त सूचना के आधार पर हत्या करवा डाली थी। तब क्रोधित कन्नगी ने सम्पूर्ण राजधानी को जला दिया था, किन्तु अपने सतीत्व के बल पर वह पुनः अपने मृतकपति के साथ एक हो गई एवं वे दोनों सदेह स्वर्ग गए। तमिल महाकाव्य शिलप्पादिकारम् में कन्नगी की कथा वर्णित है। इससे यह भी पता चलता है कि चेर राजा शेनगुहुवन ने कन्नगी को समर्पित एक भव्य मन्दिर का निर्माण करवाया। कुछ किंवदन्तियों के अनुसार इस राजा ने तब एक हजार स्वर्णकारों की बलि चढ़ा दी, जब इन स्वर्णकारों के संघ में से किसी एक ने अपने अपराध (अभियोग) को छुपाने के लिए कन्नगी के पति को ही अपराधी (चोर) सिद्ध कर दिया था।[1]

भारत की प्रत्येक मातृसत्तात्मक जनजातियों ने अपनी अलग मातृदेवी का विकास किया, जो अंशतः सौम्य और अंशतः विकराल थीं।[2] विशेषकर पूर्वी भारत (कामरूप) में जनजातियों एवं आर्यों पर पर्याप्त पारस्परिक प्रभाव पड़ा था। किन्तु शंकर के समय तक एक एकीकृत, प्रभावशाली एवं वीरोचित सौम्य देवी का स्वरूप स्पष्ट न हो पाया था।

इस दिशा में शंकर के पहले भी कुछ प्रक्रिया सक्रिय थी एवं वे विभिन्न देवियों के अच्छे गुणों को एकीकृत करके उन्हें एक सर्वोच्च मातृदेवी का रूप दे रहे थे। किन्तु यह अपूर्ण और अपरिपक्व था।[3] देवी उपासना के ऊपर कथित सभी प्रकृति या शक्ति देवी शंकर से पहले न तो मृदुल थी और न ही पूर्णरूप से मातृ केन्द्रित। शंकर का महत्वपूर्ण योगदान एक सच्ची मातृदेवी की अवधारणा का विकास करना था। इसे वास्तविकता से कम कभी नही आंका गया। स्तरीय कथा ग्रन्थों में (यथा शंकर विजयम्) वर्णन है कि शंकर की जीवन-कथाओं में अनेक मन्दिरों में प्रचलित देवी उपासना के वीभत्स स्वरूप के सम्बन्ध में बहुत से आख्यान अनुस्यूत हैं। शंकर ने इसे थोड़े सौम्य एवं स्निग्ध बनाने का प्रयत्न किया। उनके द्वारा

---

1. ए. पी. करमर्कर - द रिलीजन्स ऑफ इण्डिया, Vol.I, द व्रात्याज या द्रविडियन सिस्टम, पृष्ठ 49
2. शास्त्री - गोडेसेज इन साउथ इण्डिया
3. डॉ. एस. शर्मा - ललिता सहस्रनाम।

प्रभावित दो मौलिक रूपान्तरों पर प्रकाश डालने के लिए यहाँ दो सुविख्यात कथाएँ द्रष्टव्य हैं।

प्रथम कहानी के अनुसार उन्होंने शंकराचार्य काँची के कामाक्षी मन्दिर में (अपने ही हाथों द्वारा) अपने सिर के बलिदान को रोका। अन्य विधियों के साथ-साथ उन्होंने इस प्रक्रिया में बौद्धिक तर्क का सहारा लिया। वर्णन है कि शंकर ने चमत्कारिक ढंग से देवी के रक्तपिपासित नेत्रों एवं मुँह को बदल दिया। उसे श्रीचक्र में बन्द कर दिया तथा उसे वर्तमान नाम कामाक्षी या सुनयना या प्रेमनयना से अभिहित किया। एक ऐसे ही चमत्कार में एक अन्य छाया को तिरुवोत्रियूर में कैद कर दिया था तथा उस देवी का भी दूसरा नामकरण– सम्पूर्ण त्रिभुवनों में सर्वसुन्दरी अर्थात् त्रिपुरासुन्दरी किया गया। मदुरई के साथ-साथ अन्य स्थानों से भी ऐसी चमत्कारिक रूपान्तरण की कथाएँ प्रसिद्ध हैं। देवी उपासना के भयानक स्वरूप के सम्बन्ध में कुछ इसी प्रकार के साक्ष्य शंकर से पहले के भी हैं। कुछ साक्ष्य स्थानीय लोक साहित्य में भी मिलते हैं तथा कुछ शंकर के जीवन चरितों में भी। कैसे उसने मातृ-पूजा को एक सौम्य मातृदेवी उपासना में परिवर्तित करने में सफलता पाई। परिवर्तन के प्रतिमान पर उसके प्रभाव की सर्वश्रेष्ठ पुष्टि इस आस्था से होती है कि उपासना की यही विधि, मानक/मानदण्ड थी तथा देवियों की सच्ची उपासना का रूप यही है।

इस रूपान्तरण को प्रभावित करने में उसे तीन कारकों से सहायता मिली। प्रथम, हिन्दूधर्म में चल रहा तत्कालीन आन्दोलन, जिसे सामान्यतया तंत्रवाद कहा जाता है। बौद्ध धर्म के पतन एवं अधिकांश लोगों में इसके अप्रचलन के बाद विभिन्न सामाजिक-मनोवैज्ञानिक कारणों के कारण सामान्यतया सौम्य देवियों की अनेक उपासना पद्धतियों का प्रादुर्भाव हुआ। इन देवियों में अनुकम्पा एवं वीरता का अद्भुत समन्वय था। वास्तव में बौद्ध धर्म में भी एक तांत्रिक प्रशाखा का आविर्भाव हुआ। इनमें से कुछ तो शंकर के पहले के थे और कुछ उसके समसामयिक। सौम्य पक्ष में उन्होंने देवी के साथ आन्तरिक भावनात्मक तादात्म्य को प्रोत्साहित किया, जबकि अन्य पक्ष में कुछ उपासकों ने संभोगात्मक गुप्त-उपासना पद्धति

का अनुसरण किया। महान् देवी का माहात्म्य सभी प्रकार की बुरी शक्तियों के विजेता के रूप में प्रतिष्ठित हो रहा था।[1] इस विकास (प्रक्रियाओं) की कोई स्पष्ट क्रमबद्धता या सुसंगत वृतान्त ज्ञात नहीं होता। यहाँ पर यही कहना पर्याप्त होगा कि इनमें से कुछ रूप शंकर से पहले घटित हुआ होगा तथा इसने शंकर के निर्माण-कार्य में कुछ अवदान दिया होगा।

शंकर पर प्रभाव डालने वाला दूसरा कारक था–तमिलनाडु में ऊभर रहा भक्ति आन्दोलन। चाहे हम उसका (शंकर का) काल छठी शताब्दी के आसपास रखें या 9वीं शताब्दी, शंकर को तमिल भक्ति-परक काव्यों में अभिव्यक्त करने का अवसर प्राप्त था। उसकी मातृभाषा सम्भवतः स्थानीय ब्राह्मण-प्रभाव से युक्त तमिल की ही कोई उपभाषा थी, क्योंकि भाषा के रूप में मलयालम का आविर्भाव 10वीं शताब्दी तक नहीं हो पाया था। अपनी जन्मभूमि केरल से उत्तरी भारत की ओर परिभ्रमण करने के दौरान वह निश्चित रूप से तमिलनाडु से गुजरा होगा। पुनः यदि हम उनकी कृतियों–आनन्दलहरी एवं सौन्दर्यलहरी का निरीक्षण करें तो उनमें तमिल संत कन्नप्पर का सुस्पष्ट उल्लेख मिलता है। प्रमुखतया उसके गम्भीर दार्शनिक कार्यों में विष्णु के भक्तों-भागवतों का स्पष्ट उल्लेख मिलता है। ये भागवत तमिल अलवारों से भिन्न हैं। प्रतीत होता है कि उपरोक्त सभी वर्णन हमें ऐसा सोचने के लिए पर्याप्त साक्ष्य प्रस्तुत करते हैं कि शंकर ने तमिल भक्ति आन्दोलन के या तो पहले या बाद के काल में अपना मत प्रतिपादित किया था। शंकर की अपनी अवधारणा है कि व्यक्ति उस विराट, महान् मातृदेवी का शिशु है। इस अवधारणा को तमिल भक्ति काव्य में विकसित हो रहे तादात्म्यीकरण के विभिन्न कार्यों एवं साधनों की वैधता (स्वीकृति) के द्वारा काव्यात्मक ढंग से मजबूत किया गया था। जैसा कि उत्तर भारत में तंत्रवाद के अधिक सौम्य (उदात्त) प्रकारों के द्वारा किया गया।[2]

---

1. देवी माहात्म्य XII, 28-30 ऋग्वेद, वाक् सूक्त।
2. भगवतीं प्रियं देवीं अखिलजगन्मातरं अस्मन्मातरं अशरण्यशरण्यां शरणमहं प्रपद्ये। श्री भगवद्रामानुज विरचितं शरणागति गद्यम्।

किन्तु शंकर पर निर्णायक प्रभाव डालने वाला कारक था–स्वयं उसकी अपनी माँ के प्रति अगाध श्रद्धा जो उसके बचपन का अनुभव, आवश्यकता एवं पदच्युति या हानि पर आधारित थी। उसकी कथा के सभी श्लोक इस महत्वपूर्ण तथ्यों के समर्थक हैं। जीवन के प्रारम्भ में ही शंकर के पिता की मृत्यु हो गई तथा अपनी माँ के साथ उसे अनेक कष्टदायी परिस्थितियों में गुजरना पड़ा। इस कारण उसे अपनी माँ के प्रति अत्यधिक लगाव हो गया, किन्तु शंकर ने अपनी सभी प्रतिक्रियाओं को तीव्रता के ऊँचे स्तर में विकसित किया। इस बात की पुष्टि उसके कुछ कथनों एवं कार्यों से होती है।

जब उसकी माँ के प्रति आसक्ति में अपने पिता के स्थानापन्न या एक गुरु की लालसा भी सम्मिलित हो गई तो उसमें एक निश्चित द्वैध वृति का आविर्भाव हुआ। अब न तो वह परवर्ती पहलू का परित्याग कर सकता था और न ही वह अपनी माँ को नाखुश कर सकता था। मगरमच्छ की कहानी, जो कि सभी शंकरविजयम ग्रन्थों में वर्णित है, नाटकीय ढंग से इस संघर्ष को प्रस्तुत करती है तथा इसे उसकी माँ में रूपान्तरित करती है। जब एक मगरमच्छ ने बालक शंकर के पैर को धर दबोचा तो उसने उसकी माँ को शंकर की मृत्यु या उसके संन्यास दीक्षा में से एक चुनने के लिए कहा। मृत्यु में वह सदा के लिए नष्ट हो जाता। संन्यास में वह जिन्दा तो रहता किन्तु अपनी माँ एवं घर से दूर एक परिव्राजक रूप में रहता। मगरमच्छ की कहानी शंकर की उस प्रतिज्ञा से खत्म होती है जो कि उसके संघर्ष का एकमात्र लाक्षणिक समाधान है क्योंकि, उसे अपने दोनों मौलिक मनोवेगों–माँ की श्रद्धा एवं पिता के स्थानापन्न गुरु की लालसा को संतुष्ट करना था। अनिवार्य रूप से शंकर ने प्रतिज्ञा करी कि वह जहाँ भी रहेगा, अपनी माँ की अन्त्येष्टि क्रिया का अनुष्ठान करने के लिए अवश्य लौटेगा। उसकी सभी कथाओं में यह तथ्य वर्णित है कि वह वापस लौटा था तथा कट्टरपंथी ब्राह्मणों के जबर्दस्त विरोध के बावजूद उसने अपनी माँ की अन्त्येष्टि क्रिया को व्यक्तिगत रूप से अनुष्ठित किया था।

मगरमच्छ की कहानी की पुनरावृत्ति करते हुए हम कह सकते हैं कि वही एकमात्र लाक्षणिक समाधान था। शंकर के संघर्ष का एक सम्यक्

समाधान, जो उसकी अपनी माता के प्रति लगाव का रूपान्तरण एक सर्वत्र वर्तमान सर्वव्यापक एवं शक्ति माँ (जगन्माता) में था। इस दिशा का सूचक उसका मानव स्वभाव है, जिसमें वह विश्वमातृदेवी की उपासना करता है तथा उसके गीत गाता है। दूसरा सूचक अपने जीवन काल में वह जिन महत्वपूर्ण महिलाओं से मिला, उनके प्रति उसकी श्रद्धालु प्रवृत्ति रही है।

इस प्रकार 'सौन्दर्यलहरी' (Attributed to him) कविता/शब्द जिसका अर्थ है–सौन्दर्य का प्रवाह, में अम्बा की प्रशंसा में कहा गया है। कि माँ केवल अपने बल एवं अनुकम्पा से ही सम्बद्ध नहीं होती बल्कि विशेष रूप से यहाँ माता के स्तनों का वर्णन किया गया है। साथ ही उसके (शंकर के) द्वारा स्तनपान का भी उद्धरण है, जो कि आत्यंतिक रूप से वैयक्तिक अनुभव है।

तव स्तन्यं मन्ये धरणिधरकन्ये हृदयतः
पयः पारावारः परिवहति सारस्वतमिव।
दयावत्या दत्तं द्रविडशिशुरास्वाद्य तव यत्,
कवीनां प्रौढानामजनि कमनीयः कवियिता।

इस श्लोक का अनुवाद इस प्रकार किया जा सकता है–"ओ पर्वत की पुत्री! मैं तुम्हारे स्तनों को हृदय से समझता हूँ, जो दुग्ध के आधिक्य का स्रोत हैं। यह दुग्ध कोई साधारण दुग्ध नहीं है, अपितु यह ज्ञान का दुग्ध है। सम्यक रूप से आस्वाद लेते हुए इसका पान करने पर यह दक्षिण भारतीय बालक महाकवियों के बीच मृदुल रचयिता के रूप में प्रतिष्ठित हो गया।" यह भी सम्भव हो सकता है कि शंकर को ऐसी पूर्ण संतुष्टि अपनी माँ की सेवा से प्राप्त हुई हो। फलतः उसके परवर्ती जीवन में कामवासना लगभग गौण हो गई थी।

महत्वपूर्ण महिलाओं से शंकर की प्रसिद्ध मुलाकात उसकी मातृभावना की प्रवृत्ति का संकेत देते हैं। श्रीनगर में एक पण्डिताइन के साथ उसके उदारमना भेंट की कहानी सुविख्यात ही है। मातृभाव के दृष्टिकोण का एक अन्य उदाहरण बाराणसी में एक महिला पुस्तकालयाध्यक्ष को व्यक्त की गई उसकी अवधारणा है। कहा जाता है कि जब शंकर ने सहस्रनाम

की एक प्रति, उस पर भाष्य करने के लिए माँगा। 'सहस्रनाम' से उसका अभिप्राय 'ललितासहस्रनाम से था किन्तु वह 'विष्णुसहस्रनाम' की एक प्रति ले आई, जिसे उन्होंने उसे पुनः वापस नहीं भेजा। परन्तु बंगाल के महान् विद्वान एवं उनके प्रतिस्पर्धी मण्डनमिश्र की पत्नी शारदा (भारती) देवी के साथ उनका सम्बन्ध सबसे अधिक उज्ज्वल उदाहरण है।

शंकर ने वाद-विवाद एवं तर्क बुद्धि के द्वारा मण्डन मिश्र को पराजित कर दिया। अनुश्रुतियों के अनुसार तदनन्तर शारदा देवी ने शंकर को विषय-वासना के ज्ञान के सम्बन्ध में चुनौती दी। इस सम्बन्ध में सब कुछ जानने के लिए वे मृतक राजा के शरीर में प्रविष्ट हुए एवं पुनः वापसी के बाद अन्ततः उनकी विजय हुई। इस जटिल अनुश्रुति को बिना किसी संकोच या घबराहट के सुलझाने के लिए हमें यह ध्यान देना चाहिए कि कथानुसार शंकर ने अन्ततः मण्डन को वादी के रूप में प्रतिष्ठित किया। साथ ही श्रृंगेरी में अपने केन्द्रीय मठ में शारदा देवी को प्रमुख देवी के रूप में प्रतिष्ठित किया। ज्यादा सम्भव है कि जब उसके पति ने पवित्र आदेश ग्रहण किया तो शारदा ने पृथ्वी पर जीवित रहना उचित नहीं समझा या वह एक जीवित साध्वी हो गई। यह कहानी शंकर की मातृ-उपासना की प्रगाढ़ क्षमता का संकेत करती है।

समय के इस प्रवाह में इस बात की चर्चा करना अप्रासांगिक है कि सम्पूर्ण भारत में देवी उपासना की संस्थापना का श्रेय किसे दिया जाए? शंकर को या इस दिशा में कार्यरत प्रारम्भिक ऐतिहासिक कारकों को। यहाँ यह ज्यादा उल्लेखनीय तथ्य है कि नवीं शताब्दी तक एक परिष्कृत सामान्य उपासना-पद्धति संस्थापित हो चुकी थी। तथा तब से इसने दार्शनिकों एवं भारतीय धार्मिक नेताओं पर प्रबल प्रभाव डाला। अलवरों के भक्तिमय कविताओं में विष्णु की पत्नी के रूप में श्री या लक्ष्मी को उच्च स्थान दिया गया है। बहुफलदायक/प्रजावती तिरुमंगई एवं नम्मलवार अन्याल से बिल्कुल पृथक हैं। उसकी पहचान प्रेमातुर या प्रियोपेक्षित स्त्रियों या सात्विक उपासिकाओं के रूप में है। जब कि पेरिअलवार अपने को देवता की माँ के रूप में परिचित कराती है। वास्तव में चार हजार श्लोकों में एक भी

ऐसी कविता नहीं है जो पूर्णतः श्री या लक्ष्मी को समर्पित हो, किन्तु 11वीं सदी में यमुनाचार्य के समय तक उसकी चतुश्लोकी में श्री की महत्ता माँ एवं पत्नी के रूप में प्रतिष्ठित हो चुकी थी। इस परम्परा को आगे बढ़ाते हुए रामानुज ने अपनी प्रसिद्धकृति 'शरणमेति'[1] में गुरु एवं रानी साम्राज्ञी के रूप में श्रीदेवी की स्थिति को और ऊँचा कर दिया था। इसके अनुसार भगवत्ता तक पहुँचने के पहले इनका नमन अनिवार्य था। उस समय तक मातृ उपासना-पद्धति ने दक्षिण भारतीय वैष्णव धर्म पर इतना अधिक प्रभाव डाला कि श्री, विष्णु की आन्तरिक अवियोज्य भाग/हो गई। रामानुज ने इस कार्य को विभिन्न तरीकों से सम्पादित किया। विशेषकर 'श्री निवास' पद के प्रयोग के द्वारा और खास तौर पर श्रीभाष्य के आरम्भिक प्रार्थना[2] में महत्वपूर्ण ढंग से इसका प्रयोग करके इस कार्य को निष्पन्न किया। उसके बाद टीकाकारों ने श्रीसूक्तम् की सूक्तियों में नवजीवन का संचार किया तथा उसका (श्री का) उल्लेख माँ एवं अवियोज्य साथी के रूप में किया। संस्कृत केन्द्रित वेदान्त देशिक में अवियोज्य श्री पर बल और अधिक प्रगाढ़ हो गया। तमिल केन्द्रित वैष्णवों ने भी श्री की महत्ता पर जोर दिया। तब से देवी उपासना के विभिन्न दार्शनिकों एवं सेनानायकों पर सतत् प्रभाव पड़ा था। दोनों स्थितियों में यह सिद्ध हो गया कि यह धार्मिक या राजनीतिक अखण्डता की एक प्रभावशाली साधन है। अप्पय दीक्षित पहले व्यक्ति थे, जिन्होंने देवी को शैवधर्म एवं वैष्णव धर्म के बीच एक पुल के रूप में देखा।[3] पौराणिक स्तर पर देवी या अम्बा शिव की पत्नी तथा विष्णु की बहन थी। किन्तु इन दोनों सम्प्रदायों को एक मंच पर लाया गया। ब्रह्म वैज्ञानिक स्तर पर दीक्षित ने सर्वदा इस बात को ध्यान में रखा कि वे सभी तीनों एक ही थे। देवी उपासना के इस सम्प्रदाय ने इस बात का दावा/अपेक्षा सम्पूर्ण भारत में अपने परवर्ती अनुयायियों, विभिन्न चिन्तकों, कवियों एवं रहस्यवादियों/रहस्यदर्शियों से किया।

---

1. रामानुज - शरणागतिगद्यः।
2. रामानुजाज टीचिंग्स इन हिज ऑनवर्ड-भारतीय भवानी इन - 1970 पृष्ठ 129
3. एन. रमेसन, श्री अप्पय दीक्षित आ. XII,XIII

यथा–भास्कर राय, रामकृष्ण परमहंस, बंकिमचन्द्र, विवेकानन्द, टैगोर, एवं भारती। इन सबने देवी के प्रति एक पंथनिरपेक्ष भक्ति की उद्घोषणा की। सबसे उत्तरवर्ती एवं इन सबों में सर्वोच्च काँची के संत हैं जो अपने व्याख्यानों एवं प्रदर्शनियों के द्वारा अव्यवहित रूप से अम्बा की उपासना का उपदेश देते हैं।[1]

हिन्दू सेना एवं राजनेता शताब्दियों से सामाजिक एवं विजय में वीरोचित विश्वास कायम रखने के लिए मातृदेवी से प्रेरणा लेते रहे हैं। हम यहाँ गुरु गोविन्दसिंह के द्वारा चण्डी की प्रार्थना एवं उसके द्वारा दुर्दमनीय खालसा सेना के निर्माण का उद्धरण दे सकते हैं। इसी तरह शिवाजी की भी भक्ति देवी भवानी के प्रति थी और कहा जाता है कि उससे शिवाजी ने विजय का कृपाण प्राप्त किया था।

हिन्दू भक्ति एवं पुनर्विजय के (मराठा) आन्दोलन के उद्घाटन के लिए भी शिवाजी देवी के यहाँ गया था (उसकी उपासना की थी)। 19वीं सदी के उत्तरार्ध एवं 20वी सदी के पूर्वार्द्ध में बंगाल एवं पंजाव के राष्ट्रवादी (राष्ट्रीय) उग्रवादियों के एक दल के लिए मातृदेवी साहस के स्रोत के रूप में साबित हुई। जबकि 'भारतमाता' के रूप में भारतवर्ष का व्यक्तिकरण अराजनैतिक भारतीय समुदायों को एक सीधा एवं सशक्त अपील सा लगा। रक्षा की आकांक्षा में महामाता का यह उभयभावी संयोग था तथा एक प्रेरणाप्रद विजयी मातृदेवी युवकों एवं जनसमुदाय की एक प्रभावशाली भावनात्मक उपकरण थी। विश्व इतिहास में महत्त्वपूर्ण छवियों एवं मिथकों की अपेक्षा शताब्दियों से हिन्दू राष्ट्रीय अखण्डता में माँ (माता) के रूपक ने बहुत बड़ी भूमिका निभायी। ऐसा मुख्यतया इस कारण हुआ कि शंकर के संश्लेषण के द्वारा इसे सुसज्जित कर दिया गया था तथा मध्यवर्ती एवं परवर्ती शताब्दियों में दार्शनिकों, कवियों एवं देशभक्तों ने (स्वतंत्रता सेनानियों ने) इसे सतत् मजबूती प्रदान की। इस प्रकार पूरा भारत शक्तिस्वरूपा भारतमाता के रूप में शक्तिशाली बना।

1. के एम. पनिक्कर - सर्वे ऑफ इण्डियन हिस्ट्री, पृ. 274.

अध्याय 7

वेदान्त के दृष्टिकोण से शक्ति

'शक्ति-दर्शन' पद शक्तिवाद के ठोस आधार पर आधृत है, जिसकी आस्था परमशक्ति में है। शक्ति सर्वोच्च सिद्धान्त को दर्शाता है तथा विश्व प्रक्रिया में केवल वही यथार्थ सत्ता/सत्य है।[1] प्राचीन भारतीय चिन्तकों ने शक्ति के इस सिद्धान्त की गहन एवं विस्तृत व्याख्या प्रस्तुत की। शक्तिवाद या शक्ति के सिद्धान्त का व्यापक सर्वेक्षण हमारे सामने एक गतिशील विश्व को उद्‌घाटित करता है, जिसमें शक्ति की अतिमहत्वपूर्ण भूमिका है।

भारतीय इतिहास के प्रारम्भिक काल का निरीक्षण करने पर हम पाते हैं कि भारतीय एक अर्थ में अपनी धार्मिक चेतना के शैशवावस्था से ही शक्ति की उपासना करता है। वैदिक द्रष्टाओं ने जो प्रारंभिक देवताओं का आह्वान किया था, वे समुज्ज्वल सूर्य एवं देदीप्यमान उषा थे। इनमे से प्रत्येक महत्त्वपूर्ण गतिविधियों एवं शक्ति के प्रदर्शक थे। सूर्यदेवता अपरिमित शक्ति के विधायक केन्द्र है। आकाश में उसके उदित होने पर सम्पूर्ण विश्व जीवन एवं उर्जा के साथ प्रस्पन्दित होता है।[2] संवाद की माध्यम वाक् भी एक शक्ति है,[3] जिसे ऋषियों ने एक देवी के रूप में प्रतिष्ठित किया है। इसे उपयुक्त रूप से शक्ति कहा जा सकता है। जीवन का यह स्पन्दन

---

1. देवी भागवत पुराण - I /2/ 19-22 सीतोपनिषद् - 34, देवी पुराण - 37/69
2. ऋग्वेद - I/115 /1 सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च।
3. वही - VIII /100 / 11

   देवीं वाचमजनयन्त देवास्तां विश्वरूपां पशवो वदन्ति।

एवं यह आन्दोलन और कुछ नहीं, बल्कि शक्ति का ही प्रकाशन है।[1]

वेदों में वर्णित सभी देव-देवियाँ शक्ति के ही साकार रूप है। प्रत्येक देवता अपनी बारी में शक्ति के एक विशेष प्रकार का प्रतिनिधित्व करते है जो उनकी व्यक्तिगत विशेषता होती है। उदाहरणतया-इन्द्र एक शक्तिशाली देवता है। साथ ही वह बादलों को तितर-बितर करने वाला तथा बिजलियों का नियन्ता भी है। प्रत्येक कार्य जिसमें असीम शक्ति की आवश्यकता पडती है, इन्द्र का कार्य कहा जाता है।[2] वरुण के बारे में कहा जाता है कि वह अपनी शक्ति के द्वारा विभिन्न आकार एवं रूप ग्रहण कर सकता है।[3] विष्णु एक अन्य शक्तिशाली देवता है, जिसकी आश्चर्यजनक शक्तियों का वर्णन अतिप्रशंसात्मक पदों के द्वारा किया गया है।[4] इस प्रकार यह शक्ति ही है, जिसकी वजह से वर्तमान वैदिक देवताओं का अस्तित्व है। यह स्वाभाविक ही है कि हम शक्तिशाली व्यक्ति या देवता के प्रति सम्मान प्रदर्शित करने के लिए झुकते है। मस्तिष्क की इस प्रवृत्ति या स्वाभाविक झुकाव में ही कोई व्यक्ति वैदिक ऋचाओं में वर्णित शक्ति-उपासना का सच्चा प्रारंभ खोज सकता है। हम यह कह सकते हैं कि वह सभी कुछ जो महान एवं उदात्त, शक्तिशाली एवं प्रतापी तथा मनोहर एवं आश्चर्यजनक हैं, शक्ति का ही प्रकाशन या मूर्तकरण हैं।[5] दिव्यशक्ति की यह महत्ता ऋग्वेद[6]

1. वाक्यपदीय - I / 111
   तस्य प्राणे च या शक्तिर्या च बुद्धौ व्यवस्थिता।
2. निरूक्त VII /10
   'याच का च बलकृति इन्द्रकर्मैव तत्।'
3. अथर्ववेद - XIII/ 3 /13.
4. ऋग्वेद - I / 154 /1
   विष्णोर्नुकं वीर्याणि प्रवोचम्।
5. देवी भागवत पुराण - VII29/3
   यद्यद् विभूतिमत्सत्वं श्रीमदूर्जितमेव वा।
   तत्तदेवावगच्छ त्वं पराशक्त्यंश सम्भवम्।।
   सप्तशती - 5/10-80
   स्कन्द पुराण - 7 / 22/2
   कूर्म पुराण - 12/216- 224
6. ऋग्वेद - III/55

की ऋचाओं की प्रमुख विषयवस्तु रही है। इस प्रकार शक्तिवाद की आधारशिला प्राचीन वैदिक साहित्य में विद्यमान थी।

जैसाकि कहा गया है कि वैदिक द्रष्टा शक्ति के अस्तित्व के प्रति जागरूक (चेतन) थे, विशेषकर देवताओं के प्रति उनके दृष्टिकोण में यह बात सिद्ध होती है। शक्तिवाद के चिन्तकों ने तथाकथित देवी सूक्त[1] की व्याख्या इस ढंग से की है कि वे हमें शक्ति के चमत्कारिक रहस्योद्घाटन पर अपना ध्यान आकृष्ट करने के लिए मजबूर करते है।

यह ऋचा हमें शक्ति का एक उदात्त आदर्श प्रस्तुत करता है कि विभिन्न प्रकार के देव-देवियों के उद्गम की मूल शक्ति है।[2] उनके अपने कार्यो का निरीक्षण एवं नियमन भी शक्ति के द्वारा ही होता है। शक्ति न केवल देवताओं में है, बल्कि विश्व में सीमित एवं असीमित, पदार्थ एवं अपदार्थ-सभी वस्तुओं में एवं सर्वत्र अपने को प्रकट करती है।[3] एक तुच्छ या इलेक्ट्रॉन या अनन्त आयामो में विस्तृत सौर-व्यवस्था-सभी कुछ शक्ति के ही मूर्त्तरूप हैं। यह एक सामान्य ब्रह्माण्डीय सिद्धान्त है- निर्भ्रान्त एवं अनतिक्रम्य सिद्धान्त।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि यह अनुभूत किया गया है कि संभावित क्षमता की कुछ मात्रा-कोई अदृश्य शक्ति प्रत्येक वस्तु में गति के दौरान होती है तथा सभी घटनाओं के पीछे यही शक्ति होती है। देवताओं की इस आश्चर्यजनक शक्ति को ऋग्वेद[4] में अनेकधा माया कहकर पुकारा गया। इन्द्र के बारे में कहा जाता है कि वह माया की सहायता से विभिन्न रूप धारण कर सकता था, अतः उसे 'मायाविन् कहा गया है। बाद में यह विशेषण या तो शिव के लिए या ब्रह्म के लिए प्रयुक्त होने लगा।[5] अतिमानवीय गतिविधियों के लिए देवताओं की ओर से माया का अस्तित्व या अलौकिक शक्तियाँ ही जिम्मेवार है। हम कह सकते हैं कि माया सभी

1. ऋग्वेद - VIII/7/11., X/ 125/6-1-1
2. ऋग्वेद - X /125 5-6
3. वही - X /125/8
4. वही - इन्द्रो मायाभिः पुरुरूप ईयते।
5. वेदान्त सूत्र - 2.1.37 तथा श्वेताश्वतर उपनिषद् में भी - 4/10

शक्तियों में सर्वोच्च है। कहा जाता है कि ये शक्तियाँ अनन्त ब्रह्माण्ड में शांत पडी हुई है।

उपनिषदों में हमें शक्तिवाद का विस्तृत एवं विशद विवेचन मिलता है। अन्य उपनिषदों की अपेक्षा श्वेताश्वतर उपनिषद में इस सिद्धान्त की स्पष्ट विवेचना की गई है। सबसे पहले कौन तत्त्व उत्पन्न हुआ? इसे ही परम कारण निर्णीत किया जाता है, जिससे विश्व का विकास हुआ होगा। श्वेताश्वतर उपनिषद् में इसी तरह के विचार मंथन के दौरान समस्या के समुचित समाधान के रूप में काल, स्वभाव, नियति एवं यदृच्छा के सिद्धान्त को प्रस्तुत किया जाता है।[1] किन्तु इनमें से कोई भी कुतूहली या व्युत्पन्न मस्तिष्क को संतुष्ट नहीं कर पाता।

परम सत्य की प्राप्ति के लिए भक्तिपूर्ण ध्यान के अतिरिक्त वैदिक लोगों के समक्ष कोई विकल्प शेष नहीं रहता। सहसा उनके समक्ष सत्य प्रकाशित होता है एवं वे अपने मन में स्पष्ट रूप से देखते हैं कि सभी कारणों के मूल में शक्ति ही अन्तर्निहित है।[2] यही सभी कारणों का अन्तिम कारण है। शक्ति पवित्र एवं दैवी है तथा सर्वोच्च सत्ता से समीकृत हैं। आगे कहा गया है कि ब्रह्म की सर्वोच्च शक्ति अनेक रूपों और आकारों वाली है। ज्ञान और क्रिया की वह शक्ति केवल तभी स्वाभाविक रहती है, जब वह ब्रह्म के साथ संयुक्त हो।[3] इसी उपनिषद् में (श्वेताश्वतर) आगे चलकर एक अति महत्त्वपूर्ण बिन्दु पर प्रकाश डाला गया है, जिसे हम शाक्त तंत्रों में भलीभाँति विकसित पाते हैं। अर्थात् एक ही ईश्वर शक्ति के सान्निध्य के प्रभाग या सामर्थ्य से विभिन्न रूपों को अपनाता है।[4]

---

1. श्वेताश्वतरोपनिषद् – 1/1
   कालः स्वभावो नियतिर्यदृच्छा।
2. श्वेताश्वतरोपनिषद् –1/1
   ते ध्यानयोगानुगता अपश्यन् देवात्मशक्तिं स्वगुणैर्निगूढाम्।
3. श्वेताश्वतरोपनिषद् –
   परास्य शक्तिर्बहुधा च गीयते स्वाभाविकी ज्ञानबलक्रिया च।
4. श्वेताश्वतरोपनिषद् –
   एको वर्णो बहुधा शक्तियोगाद्वर्णाननेकान्निहितार्थो दधाति।

प्रसिद्ध श्रुति (तदैक्षत)[1], जो वेदान्त सूत्र का आधार है, 1.1.5. हमें ब्रह्म की इच्छा शक्ति का संकेत देती है। यथार्थ विचार-विमर्श (चिन्तन) के बाद सृष्टि का आविर्भाव होता है। ब्रह्म (हमारा तात्पर्य सगुण ब्रह्म से है), का संकल्प ही इतना शक्तिशाली/प्रभावशाली है कि संकल्पमात्र से नाम-रूपात्मक जगत् का आविर्भाव हो जाता है। उस महान् अभिकल्पक बिना किसी सहायता के केवल अपनी अचूक इच्छा शक्ति से प्रकाश (तेज), जल आदि की सृष्टि करने के लिए अग्रसर हुआ। हमें यह निश्चितरूप से स्मरण रहना चाहिए कि सृष्टि एवं प्रलय क्रमशः शक्ति के आविर्भाव एवं तिरोभाव को ही दर्शाते हैं।[2] सम्भवत हम इन दोनों में कोई अन्तर बता रहे हैं, जैसा कि हम साधारण परिस्थितियों में कई बार कर डालते हैं। कमोबेश शक्ति का एक तत्त्व के साथ सम्मिलन का यह मार्ग/तरीका उपनिषदों के एकेश्वरवादी आदर्श से संघर्ष उत्पन्न नहीं करता है। शक्ति एवं शक्तिमान के बीच अभिन्नता का यह सिद्धान्त इस अवधारणा को सशक्त समर्थन प्रदान करता है।

शक्ति, जैसा कि अभी हमने देखा, स्वयं ही ब्रह्म है। इसकी अलग कोई सत्ता नहीं है, अपितु यह केवल ब्रह्म में ही अन्तर्निहित है। उपनिषदों, पुराणों एवं शाक्त तंत्रों में शक्ति एवं ब्रह्म को एक-दूसरे से अवियोज्य कहा गया है।[3] यह अवियोज्यता या अपृथकता ही शक्तिवाद का मूल स्वर है।[4]

1. छान्दोग्य-उपनिषद् - VI /2/3
2. देवी भागवत पुराण - I/16/24-26
3. लिंग पुराण -
   उमाशंकरयोर्भेदो नास्त्येव परमार्थतः।
   द्विधासौ रूपमास्थाय स्थित एको न संशयः।
4. महानिर्वाण तन्त्र 1/16
   शक्ति संगम तंत्र-काली खण्ड - 1/22 , 98-99
   शक्ति का सांख्य दृष्टिकोण भी - 'शक्ति शक्तिमतोरभेदः।
   सूत संहिता - यज्ञ वैभव खण्ड - 13/3-5,
   लिंग पुराण - II/ 11/1-34
   शिव पुराण - 2/2/31/25
   सेयं परा शक्ति परमेश्वरादभिन्ना। तत्त्व प्रकाश - 2/7

शाक्त तंत्रों में शक्ति की सभी आकर्षक अवधारणाओं का सुन्दर विवेचन किया गया है। शाक्तों के लिए शक्ति ही देवी हैं यही शुद्ध चैतन्य और पराशक्ति है, जो अन्तर्बाह्य व्याप्त है।[3] यह विश्व व्यवस्थाओं का नियमन करती हैं तथा शारीरिक एवं मानसिक-सभी प्रयासों के द्वारा प्रतिपल इसे अनुभव योग्य बनाती है। तंत्र ने शक्ति की गरिमा को सर्वोच्च सम्भव पद पर प्रतिष्ठित किया है तथा शक्ति का व्यक्तिकरण महान् जगत् माता के रूप में किया है।[1] शाक्त मत जैसा कि तंत्रों में प्रतिपादित किया गया है, विश्व को शक्ति का मूर्त्तरूप उद्‌घोषित करने के लिए अभिमुख है। शक्ति के सम्बन्ध में कहा जाता है कि वही परम सत्ता है और वह सभी घटनाओं की पृष्ठभूमि में मूल कारण है।[2] पदार्थों का उद्‌गम स्रोत शक्ति ही है तथा उनके सीमित आकारों के नष्ट होने पर वे पुनः उसी में समाविष्ट हो जाते हैं। इसी प्रकार शक्ति शाश्वत, नित्य, अनन्त एवं असीम है। इसका न प्रारम्भ है और न अन्त।[3] यह आद्याशक्ति भी कहलाती है, जिससे जगत् का आविर्भाव हुआ है।

अन्य चिन्तन सम्प्रदायों से शाक्तों ने शक्ति की विभिन्न व्याख्या प्रस्तुत की है किन्तु इनकी व्याख्याएँ पर्याप्तरूप से स्पष्ट हैं। शाक्तों ने शक्ति की एक महत्त्वपूर्ण स्थिति को नियत किया है। किन्तु यह उन लोगों के अनुरूप नहीं है, जो शक्ति को स्थूल रूप से पंथनिरपेक्ष दृष्टि से देखते हैं। शक्ति का सिद्धान्त जैसाकि तंत्रों में प्रतिपादित किया गया है, अपने में आध्यात्मिक जीवन के एक महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त को समाविष्ट करता है[4] तथा यह हमें व्यापक मुद्दों एवं भावोद्दीपक रहस्योद्‌घाटन के समीप लाता

---

1. शक्ति संगम तंत्र - काली खण्ड - 2/41,11
   सरस्वती भवन स्टडीज, Vol. I, 22
2. महानिर्वाण तंत्र - 4/10
   देवी भागवत पुराण - IV/15/179
   विश्वजननी पुराणेषु प्रकीर्तिता।
3. शक्ति संगम तंत्र, काली खण्ड - 1/98-99
4. प्रपंच-सार तंत्र - 2/43.

है। सकल जगत्–जैसाकि यह बना हुआ है शक्ति का ही मूर्तरूप है। हम जो कुछ भी देखते हैं, सभी की निर्मात्री शक्ति ही है। सब कुछ जो गतिशील है एवं सांस लेता है–शक्ति का ही एक प्रदर्शन है।[1]

शक्ति की यह उदात्त अवधारणा भारतीय मन की धार्मिक भावनाओं पर अपना कार्य करने लगी। शक्ति के इस सर्व व्यापक पहलू ने जीवन की धार्मिक प्रवृत्ति पर अपना अमिट (गहरा) प्रभाव डाला। इस प्रकार एक पवित्र आस्था के अनुसार शक्ति को सर्वोच्च देवी माना जाता है तथा इसने अपने पंथ में असंख्य अनुयायियों को शामिल (आकर्षित) किया। शक्ति की साधना पूर्ण श्रद्धा एवं भक्ति के साथ ही की जाती है।

कहा जाता है कि शक्ति के परम स्वरूप को समझने के लिए शुद्ध साधना आवश्यक है। शक्ति जीवन शून्य अमूर्तप्रत्यय (कल्पना) नहीं है और न ही गतिशील ऊर्जा का स्थूल रूप है। यह हमारे आत्मनिष्ठ एवं वस्तुनिष्ठ–दोनों जगतों को सम्मिलित किए हुई है।[2] जैसा कि चर्चा किया गया है कि मन के तीन कार्य हैं– चिन्तन, संकल्प और भावना। यह मन शक्ति का महान् केन्द्र है। इसलिए इसका वर्णन मनन शक्ति के रूप में उचित ही है। यद्यपि यह पदार्थ में पाया जाता है (इसकी रचना पदार्थ से हुई है), इसलिए इसे जड़/निष्क्रिय कहते हैं। किन्तु शक्ति का अर्थ है–जीवित शक्ति–आत्मा जो हम सभी में गतिशील है। चित्त या चैतन्य के रूप में वह सभी में निवास करती है तथा इसकी पहचान शक्ति के पूर्ण रूप में की गई है।[3]

चित् या चैतन्य के बारे में कहा जाता है कि वह असीम/अनन्त एवं अचिन्त्य शक्ति का भण्डार है। उसे कोई अभिभूत एवं पराभूत नहीं कर सकता।[4]

---

1. महानिर्वाण तंत्र - 4/10-11.
   बोस और हलधर-तन्त्राज्, पृ. 86
2. देवी भागवत पुराण - XII/8/76-78,68,62-63
3. वही - I/1-1.
4. वायु पुराण -
   'स्वतंत्रता नित्यमलुप्तशक्तिः'
   देवी भागवत पुराण 1/8/34.

वेदान्त दर्शन में शक्ति

वेदान्त पर दृष्टिपात करने पर हम यह जानकर चकित होते हैं कि इस दर्शन में शक्ति की अतिमहत्त्वपूर्ण स्थिति है। वेदान्तवादी हमारे विश्वास को दृढ़ करते हुए कहते हैं कि सभी कुछ शक्ति से सम्पन्न है। उनका यह भी विश्वास है कि शक्ति के अनेक रूप हैं। शंकर ने कहा है कि शक्ति पदार्थ से भी सम्बद्ध है तथा वह ब्रह्म का भी अपृथक गुण है।[1] उन्होंने शक्ति के आनुभविक एवं अनुभवातीत–दोनों पहलुओं को स्वीकारा है।

वेदान्त सूत्रों में 'शक्ति' शब्द का स्पष्टतः विवेचन हुआ है।[2] शंकर कहता है कि कारण यद्यपि जो अपने में शक्तिशाली है, कुछ उपकरण की आकांक्षा (आवश्यकता) में प्रयुक्त होता है। कारण या शक्ति की आवश्यकता किसी कार्य के सम्पादन के लिए होती है।[3] यहाँ यह ध्यातव्य हैं कि नैयायिक भी इस विचार से सहमत हैं। किसी वस्तु का कारण या शक्ति में ही वह वस्तु निहित (पहले से विद्यमान) होनी चाहिए। यहाँ शंकर दो शक्तियों का उल्लेख करते हैं–एक कारण से सम्बन्धित (उपादान) तथा दूसरी उपकरण से सम्बन्धित अर्थात् निमित्त कारण।

शंकर ने शक्ति के विभिन्न रूपों/प्रकारों का संकेत किया है। यथा-दृक्शक्ति[4] (देखने की शक्ति) सर्ग शक्ति (सृष्टि की शक्ति) प्रवृत्ति शक्ति[5] (गति की शक्ति), वीजशक्ति (एक बीज की शक्ति) इत्यादि। कहा जाता है कि जगत् के आविर्भाव के पहले शक्ति अव्यक्त अवस्था में सोई रहती है। (पड़ी रहती है)। हम जिसे सृष्टि कहते हैं, वह शक्ति

---

1. वेदान्त सूत्र पर शंकर भाष्य - 2.1.37
2. वेदानत सूत्र - 2/2/9/,2/3/38.
   'शक्ति विपर्ययात्'
3. वेदान्त सूत्र-शंकर भाष्य - 2/3/38.
   शाक्तोऽपिहि सन् कर्ता करणमुपादाय क्रियासु प्रवर्तमानो दृश्यते।
4. एस. बी. अन्डर (Under) 2.2.6.
   दृक्शक्ति सर्गशक्ति वैयर्थ्यमयाच्चेत्।
5. O.P.Cit. वेदान्त सूत्र - 2.2.7.
   कश्चित्पुरुषो दृक्शक्ति सम्पन्नः प्रवृतिशक्तिविहीनो।

का केवल व्यक्त रूप है। शंकर बीजशक्ति को एक सदृश उदाहरण के रूप में उद्धृत करते हैं।[1] उदाहरणस्वरूप-बीज में ही वृक्ष को उत्पन्न करने की शक्ति अन्तर्निहित है, किन्तु बीजावस्था में यह प्रसुप्त रहती है।[2]

शक्ति के अस्तित्व में विश्वास, कोरा विश्वास (केवल कपोल कल्पना) नहीं है। अपितु इसकी पुष्टि आनुभाविक तथ्यों से भी होती है। एक नन्हें फूल से लेकर विशाल/शक्तिशाली सूर्य तक प्रत्येक वस्तु अचिन्त्य परिणाम में शक्ति से सम्पन्न है। उदाहरणतया-बालू के एक कण में इतनी शक्ति अन्तर्निहित है कि हम इसके बारे में सम्पूर्ण रूप से समय के किसी चिन्त्य अवधि के दौरान जानकारी प्राप्त नहीं कर सकते। जबकि यह बालू के एक कण का ही कारण है। तब कोई कैसे ईश्वर की शक्ति का अनुमान लगा सकता है। चाहे वह कल्पना की कितनी ही खींचतान क्यों न करें।[3] प्रतीत होता है कि शंकर विभिन्न शक्तियों के प्रति पूर्ण जागरूक है, जैसा कि जादूई पत्थरों, अभिचार एवं सशक्त भीड़ के द्वारा प्रदर्शित किया जाता है। वे स्पष्ट रूप से कहते हैं कि इनमें तथा अन्य अनेक बातों में चमत्कार घटित कराने की क्षमता है।[4]

सत्कार्यवाद का पक्ष लेते हुए तथा ठीक उसी समय कारण एवं परिणाम की एकता का वर्णन करते हुए शंकर ने शक्ति के सम्बन्ध में कहा है कि

---

1. वही - 1.4.2.
   बीजशक्त्यवस्थमव्यक्तशब्द् भाग्यं दर्शयति।
2. III/56
   वटबीजे यथावृक्षः सूक्ष्मरूपेण तिष्ठति। S.B. 2.1.30
   एकस्यापि ब्रह्मणो विचित्र शक्ति योगात्।
3. यदा लौकिकानां प्रत्यक्ष द्रष्टानामपिशक्तिरचिन्त्या तदा शब्दैकसमधिगम्यस्य ब्रह्मणः किन्नु वक्तव्यम्। रत्नप्रभा।
   वेदान्तसूत्रों के सभी भाष्यकारों ने वाग्मितापूर्ण ढंग से परम ब्रह्म की अचिन्त्य शक्ति का विवेचन किया है–
   परमात्मनो विचित्राः शक्तयः स्युः।
4. S.B.Under वेदान्तसूत्र - 2.1.27
   लौकिकानामपि मणिमन्त्रौषधी प्रभृतीनां देशकालनिमित्तवैचित्र्यवशाच्छक्तो निरुद्धानेक कार्यविषया दृश्यन्ते।

वह कारण की गतिविधि के रूप में है, जो अपने को परिणाम के रूप में प्रकट करती है।[1] करण एवं परिणाम शक्ति के केवल द्रव्य रूप हैं। इसलिए उन्हें भिन्न बताना भूल होगा। कारण का प्रारम्भिक लक्षण है कि उसमें निश्चित रूप से शक्ति अन्तर्निहित है। समान परिस्थितियों में किसी विशेष करण से कोई विशेष परिणाम ही उत्पन्न होता है। यह एक समरूप कारणिक पूर्वापरता (अनुक्रम/सिलसिला) है। इस विषय का समापन शंकर ने इस निष्कर्ष के साथ किया है कि शक्ति कारण की विशेष आत्मा है तथा हम जिसे परिणाम समझते हैं, वह और कुछ नहीं है, शक्ति का ही जीता जागता नमूना है (मूर्तरूप है)।[2] इस प्रकार शंकर के लिए कारण एवं परिणाम-दोनों ही शक्ति के रूप हैं तथा एक दूसरे से अन्तःसम्बन्धित हैं।

शक्तिवाद का विशेष महत्त्वपूर्ण एवं उत्कृष्ट पहलू, हमारे कहने का अभिप्राय अनुभवातीत पहलू से है, जो अभी कहा जाना वाकी ही है। वेदान्तियों ने आध्यात्मिक अन्तर्दृष्टि का विकास किया था, जिसके द्वारा वे शक्ति की प्रवृत्ति को गहराई से समझ सके थे। उन्होंने ब्रह्म को सभी कल्पित (सम्भव) शक्तियों के साथ प्रतिष्ठित किया तथा उसे बार-बार सर्वशक्तिमान् अप्रतिभा (अपारमित) शक्ति आदि कई संज्ञाओं से अभिहित किया।[3] सर्वशक्ति का तात्पर्य स्पष्ट करते हुए वाचस्पति कहते हैं कि ब्रह्म जगत् का उपादान एवं निमित्त-दोनों कारण हैं।[4] शंकर की ईश्वरत्व सम्बन्धी अवधारणा में शक्ति सबसे संतोषजनक स्थिति में प्रतीत होती है। शक्तिवाद उनका बहुत ऋणी है तथा स्पष्ट शब्दों में यह घोषणा करता है कि सर्वोच्च

---

1. वेदान्त सूत्र पर शंकरभाष्य, 1.1.18.
   शक्तिश्च कारणस्य कार्यनियमार्था कल्प्यमाना नान्या।
2. वही - 2.1.18.
   तस्मात् कारणस्यात्मभूताशक्तिः शक्तिश्चात्मभूतं कार्यम्।
3. वही - 1.1.1
   अस्ति तावद ब्रह्म नित्य शुद्ध-बुद्ध-मुक्त स्वभावं सर्वज्ञं सर्वशक्तिसमन्वितम्।
   वही - 2.1.30
   सर्वशक्तियुक्ता च परा देवता इति अभ्युपगन्तव्यम्।
4. वेदान्तसूत्र पर शांकर भाष्य पर भामती - 1.1.1.

सत्ता एक है, जिसमें सभी शक्तियाँ अपनी समग्रता एवं पूर्णता को प्राप्त करती हैं।[1] उनका ईश्वर-विचार शक्ति की इस समग्रता पूर्णता पर आश्रित है। विशेषण 'सर्वशक्ति' हर किसी के लिए प्रयोज्य नही है। मनुष्य एक ज्ञानशील जीव है। किन्तु उसका ज्ञान उसके अपने अनुभवों की सीमा का अतिक्रमण नहीं कर सकता। सर्वोच्च सत्ता सर्वज्ञ कहलाता है, अतः वह सब कुछ जानने की शक्ति रखता है[2]। ब्रह्म की शक्ति इस अर्थ में अनुभवातीत ज्ञानातीत। लोकातीत कहलाती है कि वह कहीं भी किसी भी व्यक्ति या वस्तु के द्वारा बाधित नहीं होती।[3]

शक्तिवाद के दृष्टिकोण से जैसा कि हमने ज्ञान की चर्चा की, ज्ञान भी अपरिहार्यरूप से शक्ति का ही एक प्रकार है। वेदान्त सूत्र (2.2.9) में शक्ति के रूप में ज्ञान का प्रत्यक्ष विवेचन हुआ है। ज्ञान एवं कर्म के बारे में कहा जाता है कि ये केवल ब्रह्म के सान्निध्य में ही स्वाभाविक होता है।

जैसे ईश्वर सर्वोच्च है, वैसे ही उसकी शक्ति भी सर्वोच्च है। उसमें सभी विलक्षण (अपरिचित) एवं भिन्न शक्तियाँ निवास करती है। वे आपस में समान या, एक-दूसरे से श्रेष्ठ नही है, अपितु वह एक ही है। वह सब कुछ जानने या करने में समर्थ है[4]। वह अपनी चमत्कारि शक्ति के बल पर कोई भी रूप धारण कर सकता है।[5] प्रत्येक वस्तु उसकी दिव्य

---

1. वेदान्त सूत्र पर शंकर भाष्य - 1.1.2.
   'सर्वज्ञात् सर्वशक्तेः कारणात् भवति तद्ब्रह्म' इस पर न्याय निर्णय टीका में भी
2. सर्वज्ञत्वं सर्वज्ञानशक्तिमत्त्वं च
   O.P.Cit शक्ति की अवधारणा इस सर्वशक्ति के उप प्रमेय/उपसिद्धान्त के रूप में वर्णित है। जो सर्वशक्तिमान् है, उसे आवश्यक रूप से सर्वज्ञ होना चाहिए।
3. न च तस्य ज्ञानप्रतिबन्धः शक्तिप्रतिबन्धेव
   क्वचिदप्यस्ति सर्वज्ञत्वात् सर्वशक्तित्वाच्च।
   O P Cit Under Ved. Sutra-2.1.22.
4. श्वेताश्वतरोपनिषद् - 6/8
5. O P Cit 4/1

शक्ति के प्रभाव के नियंत्रण में क्रियाशील है। कोई ऐसा नहीं है, जो इसके बिना कार्य कर ले। आँखें नहीं देख सकी, कान सुन न पाया तथा मस्तिष्क चिन्तन नहीं कर सका जब तक वे अज्ञात की किसी अदृश्य शक्ति के द्वारा अपने कार्यो के लिए व्यस्थित नही कर दिये गये।[1] संक्षेप में यह उपनिषदों के द्वारा उसकी अचिन्त्य शक्ति के बारे मे दिया गया बयान है। वेदान्ती ईश्वर की उस सर्वशक्तिमत्ता को विश्वास का एक विषय समझते है, जिसकी प्रबल वकालत उपनिषदों मे की गयी है।[2] विचित्र घटनाओं के जगत् की सृष्टि केवल वही कर सकने में समर्थ हैं जिसके पास अपने विन्यास में आश्चर्यजनक शक्ति है।[3] हम प्रकृति के विचित्र एवं अपरिमित दृष्टिकोण बाह्यकृति की अन्यथा व्याख्या नहीं कर सकते। प्रातिभासिक जगत् के द्वारा उत्पन्न आश्चर्य निः सन्देह किसी सामान्य जीव के लिए महाप्रभावशाली एवं अतिमहान् प्रमाणित होता है। अतः इसी ने प्राचीन द्रष्टाओं के लिए एक कारण ढूँढने के लिए प्रेरित किया। वह कारण स्वंय अतिविस्मय कारक था, सभी आश्चर्यो का आश्चर्य था, तथा जगत् को प्रत्यक्षतः अस्तित्व में लाने के लिए पर्याप्त था। जगत् की सृष्टि काफी कठिन एवं जटिल प्रतीत होती है। यह एक ऐसी क्रिया/प्रक्रिया है, जो किसी भी मानवीय शक्ति की सामर्थ्य के बाहर की बात है। किन्तु कहा जाता है कि यह ईश्वर के लिए उसकी लीला से अधिक नहीं है। स्वभावतः ऐसा उसकी अचिन्त्य शक्ति की वजह से होता है।[4] एक शक्तिशाली कारण का निर्माण जिन-जिन गुणों से होता है, वेदान्तियों ने उन-उन गुणों से ब्रह्म को प्रतिष्ठित किया है। कहा जाता है कि ज्ञान, शक्ति और माया-सभी पूर्वप्रतिष्ठित मात्रा

---

1. वेदान्त सूत्र - 3.2.36
2. बृहदारण्यकोपनिषद् - 4/4/8.
3. वेदान्त सूत्र पर शंकर भाष्य - 2.1.30.
   एकस्यापि ब्रह्मणो विचित्र शक्तियोगादुत्पद्यते विचित्रो विकारप्रपंचः।
4. O P Cit. वेदान्त सूत्र 2/1/33
   यद्यप्यस्मापि जगद्विरचना गुरुतर संरम्भेवाभाति तथापि परमेश्वरस्य लीलैव केवलेयमपरिमितशक्तित्वात्।'

में ब्रह्म से सम्बद्ध है।[1] माया विशिष्ट/असाधारण महत्त्व की एक शक्ति है, जो ब्रह्म से साक्षात संबंधित है।

शक्ति के रूप में माया

माया का यथार्थ महत्त्व निर्धारित करते समय हमें अव्यवहित रूप से कहना चाहिए कि यह शक्ति है यथा संभवतः अद्यतन कल्पित शक्ति का सर्वोच्च रूप है।[2] यह माया शक्ति ब्रह्म से सम्बद्ध है, तथा उसका आश्चर्यजनक स्वामित्व है।[3] एकेश्वरवादी भाषा में इसे कई बार अविद्या के रूप में चित्रित किया गया है। अधिक स्पष्ट रूप में माया सर्वोच्च सत्ता की असाधारण शक्ति को दर्शाता है। इसने प्रत्यक्षतः जगत् सृष्टि के प्रश्न का वहन किया है। यह सभी घटनाओं का कारण एवं उद्गम है। माया सतत् क्रियाशील है तथा जगत् की असाधारण विविधता के मूल में यही है। ब्रह्म को निष्क्रिय एवं हस्तक्षेप न करने वाला मान लेने पर वेदान्तियों के लिए यह आवश्यक हो गया था कि वे एक ऐसी शक्ति, ऐसा सक्रिय सिद्धान्त का प्रतिपादन करें जो सभी घटनाओं और गति विधियों के लिए जिम्मेवार हो। इस आश्चर्यजनक शक्ति को माया कहा गया, जिसकी, सहायता से ब्रह्म सब कुछ सम्पादित करता है।[4] माया से संयुक्त ब्रह्म की अवधारणा ही सगुण ब्रह्म की अवधारणा है।[5] अपने सभी नामों और रूपों

1. वेदान्त सूत्र - 2/1/37
   यस्मादस्मिन् ब्रह्मणि कारणे परिवर्तमाणे सर्वे कारणधर्मा उपपद्यन्ते सर्वज्ञं सर्वशक्तिमहामायं च ब्रह्मेति।
2. बौद्ध विचारधारा के अनुसार–
   अविद्या वासना का एक प्रकार है या शक्ति हैं
   तत्वसंग्रह पर कमलशील की टीका।
3. दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया।
   सप्तशती, देवी भागवत पु. - I /5/5
   शंकर भाष्य-वेदान्त सूत्र पर 1.4.3
4. वेदान्त सूत्र पर शंकर भाष्य - Y 4/8
   न हि तया विना परमेश्वरस्य शक्तिमत्वं सिध्यति शक्तिरहितस्य प्रवृत्यसम्भवात्।
5. वही–
   द्विरूपं हि ब्रह्मणः अवगम्यते नाम रूप-विकार-भेदोपाधिविशिष्टं तद्विपरीतं च।

सहित यह जगत् अपना उद्‌भव, पालन एवं संहार के लिए सर्वोच्च सत्ता का आभारी है। यह सर्वोच्च सत्ता सगुण है, जिसमें आश्चर्यजनक शक्ति या मायाशक्ति समाविष्ट है।[1] शंकर तब उपनिषदों की शिक्षा का केवल अनुमोदन करते है, जब वे ब्रह्म को अनेकधा मायावी के रूप में चित्रित करते है। इनका (महामायम् या मायावी) अर्थ है-वह शक्ति जिसका माया पर स्वामित्व है।[2]

श्री कण्ठ ने शैव दृष्टिकोण से ब्रह्मसूत्र की व्याख्या की है। शैव मत के टीकाकार/प्रतिनिधि के रूप में उन्होने ब्रह्म के लिए कई बार परम शिव शब्द का इस्तेमाल किया है। इसी तरह शक्ति का वर्णन उन्होंने उमा के दिव्य व्यक्तित्त्व में उसकी सर्वोच्च शक्ति एवं नित्य सखी के रूप में किया है। उनके मत में सर्वोच्च ज्ञान या आनन्द के समान शक्ति भी ब्रह्म का एक आवश्यक गुण या पहलू है।[3] मंगलाचरण शक्ति के उल्लेख के साथ आरंभ होता है।[4] यहाँ यह वर्णन किया है कि शक्ति परम आधार के रूप में सर्वोच्च शक्ति है, जिस पर विश्व की सम्पूर्ण व्यवस्था आधृत हैं। तदनन्तर उन्होने ब्रह्म के बारे में कहा कि वह शक्ति का स्वामी है।[5] श्रीकंठ ने पूर्ण रूप से स्पष्ट करते हुए कहा है कि ब्रह्म तब तक जगत् का उपादान एवं निमित्त-दोंनों कारण नहीं हो सकता, जब तक कि वह सर्वशाक्तिमान न हो। निरपेक्ष के रूप में ब्रह्म इस व्यवस्था में अनुमोदन नहीं प्राप्त करता। श्रीकण्ठ के प्रमुख प्रमेय में यह प्रबल आस्था सन्निहित

---

1. वेदान्तसूत्र - 1/1/2, भागवत पुराण में भी - I/1/1
   जन्माद्यस्य यत:
   यह सगुण ब्रह्म की परिभाषा भी है।
2. वेदान्त पर शांकर भाष्य - 2/1/37, श्वेताश्वतरोपनिषद् - 4/10, वेदान्त सूत्र पर श्रीकण्ठभाष्य - 1.1.1
3. श्रीकण्ठ की ब्रह्म सम्बन्धी अवधारणा निम्नलिखित है-
   'निरतिशयज्ञानानन्दादिशक्ति महिमातिशयवत्वं हि ब्रह्मत्वम्।
4. निजशक्तिमितिर्निर्मितनिखिल जगज्जाल। श्रीकण्ठ भाष्य - Verse-2 etc.
5. ब्रह्मसूत्र पर श्रीकण्ठ भाष्य - 1/1/5.
   अत एव सर्वज्ञमनन्तशक्तिविशिष्टं च ब्रह्म।

है कि शक्ति शिव तत्त्व एवं परमशक्ति का वास्तविक सार है। शिव तत्त्व एवं पराशक्ति वस्तुत परम शिव से अवियोज्य है। इस तर्क/स्थिति को मजबूत बनाने के लिए उन्होंने शिव पुराण एवं वायु पुराण से पर्याप्त उद्धरण दिये हैं। सम्पूर्ण विश्व जैसाकि यह है, शिव और शक्ति के रहस्यात्मक सम्मिलन से उत्पन्न होता है। वे दोनों समान प्रकृति के हैं, उन दोनों में कोई भिन्नता नहीं है। जैसे चन्द्रमा और उसकी किरणें एक दूसरे में अनुस्यूत है, वैसे ही वे परम अद्वैत हैं।[1] यहाँ यह ध्यातव्य है कि वह व्यवस्था सांख्य दर्शन की तरह शक्ति एवं शक्तिमान में कोई भेद नहीं करती।[2]

ईश्वर जिसमें शोभायमान हैं, शक्ति उस परमानन्द को दर्शाती है। 'आनन्दमय' की व्याख्या श्रीकण्ठ सर्वोच्च शक्ति से सम्बद्ध' के रूप में करते हैं तथा उनके मत में 'शक्ति' का अर्थ है- स्वाभाविक एवं सर्वोच्च शक्ति जो काल एवं देश से परे है, तथा जो सत्, चित् एवं आनन्द के त्रिरत्नों में अपने को अभिव्यक्त करती है।[3] शक्ति विशेष सत्ता है तथा सर्वोच्च सत्ता के गुणों को धारण करती है। कैवल्योपनिषद् का उद्धरण देते हुए श्रीकण्ठ केवल यही दिखाकर शांत नहीं हो जाते कि भगवान् शिव हमेशा अपनी शक्ति-उमा से संयुक्त रहते हैं बल्कि उमा की व्याख्या करते हुए वे यहाँ तक कहते हैं कि उसका प्रणव या परम सत्ता के साथ तादात्म्य

---

1. वही, शिव पुराण –
   शक्तिः शिवश्च सच्छब्दप्रकृतिप्रत्ययोदितौ।
   तौ ब्रह्मसामरस्येन समस्तजगदात्मकौ।।
   शक्तिः साक्षान्महादेवी महादेवस्तु शक्तिमान्।
   तयोर्विभूतिलेशो वै सर्वमेतच्चराचरम्।।
   यथा शिवस्तथा देवी यथा देवी तथा शिवः
   नानयोरन्तरं विद्याच्चन्द्रचन्द्रिकयोरिव।।
2. वही
   परमशक्ति आनन्दमय उच्यते।
3. वही–
   महासंविदानन्दसत्ता देशकालादिपरिच्छेदशून्या स्वाभाविका परमशक्तिः परब्रह्मणः शिवस्य स्वरूपं च गुणश्च।

है।[1] ब्रह्म के अंश के रूप में जीव भी शक्ति के ही प्रकार या रूप कहे जाते हैं। किन्तु अन्तर यही है कि वे ब्रह्म के विपरीत आकस्मिक सीमाओं से प्रतिबन्धित होते रहते हैं।[2]

वैष्णव भाष्यों में शक्ति

वेदान्त के सभी वैष्णव भाष्यों में किसी न किसी रूप में शक्ति के अस्तित्व को स्वीकृति मिली है। श्रीभाष्य का अध्ययन करने पर हम पाते हैं कि रामानुज, जो सोपाधिक/सगुण एकेश्वरवाद के प्रबल हिमायती हैं, न केवल शक्ति के अस्तित्व के प्रति जागरूक थे, बल्कि उन्होंने इसे ब्रह्म का अनिवार्य गुण कहा है।[3] उनके अनुसार ब्रह्म सर्वज्ञ एवं सर्वशक्तिमान सत्ता है जिसमें सभी अच्छे गुण अन्तर्निहित हैं।[4] निर्गुण पद की अपनी व्याख्या में रामानुज केवल उसमें अशुद्ध गुणों के अस्तित्व को इन्कार करते हैं। किन्तु इसका यह अर्थ कतई नहीं है कि ईश्वर सभी गुणों से रहित है। तथ्य यह है कि ईश्वर विविध/अनेक गुणों से सम्पन्न है। शक्ति उसकी महिमा से न तो अभिभूत होती है और न ही मौलिक बातों को विसंगत करती है।[5] शंकर के समान रामानुज ने भी दिव्य शक्ति की विविधता को दर्शाने के लिए श्वेताश्वतर श्रुति (6, 8) का उद्धरण दिया है।

वेदान्त के द्वैताद्वैतशाखा के सुप्रतिष्ठित भाष्यकार निम्बार्क एवं श्रीनिवास ने जीव को शक्ति की एक इकाई के रूप में वर्णित किया है, जो ईश्वर

---

1. ब्रह्मसूत्र में - 4/4/22
2. वेदान्त सूत्र पर श्रीकण्ठ भाष्य - 2.3.20-30.
3. एक अर्थ में रामानुज को शक्ति का उपासक कहा जा सकता है क्योंकि वे वैष्णव सम्प्रदाय से सम्बन्धित हैं, जिसमें लक्ष्मी नारायण की उपासना प्रमुख देवता के रूप में की जाती है।
4. सर्वज्ञ सर्वशक्तिः पुरुषोत्तमः
   वेदान्त सूत्र में 1.1.5
   सच्छब्दाभिद्येयः।
5. श्वेताश्वेतरोपनिषद् - 6/8
6. श्री भाष्य, वेदान्त सूत्र - 1/1/1
   सर्वशक्ति योगो न विरूप्यते।

या वासुदेव[6] से प्रकट होता है। ये इकाई ईश्वर के ही अंश हैं तथा शक्ति के मूर्त्तरूप हैं। ये उस परम शक्ति से आविर्भूत हैं, जो सभी शक्तियों का संयोग है। ईश्वर एवं जीव-दोनों अंश एवं पूर्ण के रूप में एक-दूसरे से सम्बन्धित हैं, जिसे शक्ति के रूप में देखा जाना चाहिए। इन दोनों में फर्क इतना है कि जीव अपनी शक्ति में सीमित है तथा ईश्वर पर आश्रित है। ईश्वर वह जो सभी शक्तियों एवं क्रियाओं का स्रोत है, जबकि ईश्वर की शक्ति असीम है तथा वह आत्मनिर्भर है।[1] प्रत्येक जीव शक्ति का जीवन्त प्रतीक है। अतः दोनों की विविधता का संकेत करती है। उनकी शक्ति अचिन्त्य है।[2] पुनः कहा गया है कि सर्वशक्तिमान ईश्वर केवले स्वयं ही अपनी शक्ति के विकीर्णन के द्वारा अपने आपको जगत् के विविध पहलुओं में परिवर्तित करता है। उसकी शक्ति इतनी महान् और रहस्यमयी है कि वह अपनी सत्ता पूर्णतः अपरिवर्तनीय बनाए रखता है। यह स्थिति तब भी बनी रहती है, जब वह अपने को (प्रतीयमान जगत्) जगत् संघटना की विविधता में रूपान्तरित कर रहा होता है।[3]

मध्वाचार्य ने ब्रह्म में असीमशक्ति के अस्तित्व को स्वीकार किया है। विष्णु पुराण का उद्धरण देते हुए यह समझाने की कोशिश की कि ब्रह्म या विष्णु की शक्ति मनुष्य की कल्पना क्षेत्र से बहुत परे है। ब्रह्म का वर्णन सभी शक्तियों के केन्द्र के रूप में की गई है।

वेदान्त के अधिकृत भाष्यकारों यथा-शंकर, श्रीकण्ठ, रामानुज, निम्बार्क एवं मध्वाचार्य ने शक्तिवाद की जो वेदान्तिक दृष्टिकोण से व्याख्या प्रस्तुत की है, इससे यह स्पष्ट होता है कि वेदान्तियों का शक्ति-सिद्धान्त के प्रति क्या दृष्टिकोण है। हमने यहाँ देखा कि शंकर ने शक्ति के अस्तित्व

---

1. वेदान्त कौस्तुम-
   अंशो हि शक्ति पुरुषो ग्राह्यः।
2. निम्बार्क भाष्य -
   तस्मात् सर्वज्ञः सर्वाचिन्त्यरूपशक्तिः विश्वजन्मादि हेतु भगवान् वासुदेवः।
3. वेदान्त सूत्र पर निम्बार्क भाष्य - 1.4.26
   परिणामात् सर्वशक्ति ब्रह्म। · · ·

को स्वीकारा है तथा ब्रह्म की कल्पना इस सन्दर्भ में निश्चय ही सगुण रूप में किया है, जो सभी शक्तियों का भण्डार है। उनके अनुसार शक्ति का ब्रह्म से पृथक् (स्वतंत्र अस्तित्व नहीं है। शक्ति केवल अन्तर्निहित एक गुण नहीं है, अपितु वह पूर्णतया ब्रह्म के साथ एक ही है। प्रतीत होता है कि वे अद्वैतवाद के प्रति पूर्ण रूप से जागरूक है तथा उन्होंने माया या शक्ति के पृथक् अस्तित्व की स्वीकृति के द्वारा इसे समग्र रूप से परिपोषित किया है।[1]

श्रीकण्ठ ने शक्ति को शिव की शक्ति या ब्रह्म के गुण के रूप में स्वीकारा है। अन्य विद्वानों के साथ-साथ रामानुज भी सहमत हैं कि शक्ति ब्रह्म या पुरुषोत्तम का अनिवार्य गुण है। निम्बार्क के अनुसार ईश्वर सर्वशक्तिमान है जबकि मध्वाचार्य का कहना है कि ब्रह्म (विष्णु) की शक्ति मनुष्य की कल्पनाक्षेत्र से बहुत परे है। इस प्रकार हम देखते हैं कि ये सभी वेदान्ती न केवल शक्ति के अस्तित्व को स्वीकारते हैं बल्कि वे उसे पर्याप्त महत्त्व देते हैं तथा उसका तादात्म्य अन्ततः ब्रह्म के साथ करते हैं।

---

1. श्वेताश्वेतरोपनिषद् - 1/3 पर शंकर भाष्य
देवस्य मायिनो परमेश्वरस्य आत्मभूतामस्वतंत्रतां न सांख्यपरिकल्पित प्रधानादिवत् पृथक्भूतां स्वतन्त्रां शक्तिं कारणमपश्यत्।

अध्याय 8

शाक्त-साधना का स्वरूप

शाक्त साधना जीव एवं परमात्मा के तादात्म्य के प्रश्न पर योग, उपासना, प्रार्थना एवं ध्यान को समन्वित करता है।[1] तंत्र उपनिषद् के एकेश्वरवादी दर्शन को स्वीकार करता है तथा भक्ति सम्प्रदाय के साथ-साथ उपासना एवं प्रार्थना के मूल्यों की सराहना करता है।[2] योग सम्प्रदाय के समान इसमें भी मन एवं शरीर के आन्तरिक सम्बन्ध पर बल दिया गया है।ये आध्यात्मिक उपलब्धि की एक सहज एवं अल्पश्रम साध्य निधि का उपदेश देते हैं। यहाँ प्रत्येक व्यक्ति पर से चाहे उसके साधन विभिन्न प्रकार के ही क्यों न हो, का स्वागत है। हाँ उनके अनुकूल कुछ अनुशासन अनिवार्य होते है।[3] तन्त्र-साधना में साधना के सभी महत्वपूर्ण प्रकार के तत्त्वों का समावेश है। यथा-योग एवं भक्ति, मंत्र एवं होम, ज्ञान एवं कर्म। इन सभी तत्त्वों के समन्वय का अभिप्राय यह दर्शाता है कि तान्त्रिक साधना विभिन्न प्रकार की साधनाओं के कुछ शुभ तत्त्वों का संश्लेषण है। यही कारण है कि उसके द्वारा अपने अनुयायियों को दिया गया यह आश्वासन कि परम तत्त्व की उपलब्धि आसान और शीघ्र प्राप्य है औचित्यपूर्ण है।[4] तन्त्र की यह उद्घोषणा है कि वह अपने साधक को न केवल मुक्ति बल्कि भुक्ति भी प्रदान करता है, न केवल निःश्रेयस बल्कि अभ्युदय भी प्राप्त करवाता है।[5]

1. शक्ति संगम तंत्र - 1/56
2. ब्रह्मा (एन.के.), हिन्दू फिलॉसोफी, पृष्ठ 83
3. महानिर्वाणतंत्र - 2/20-22,27
4. कुलार्णव तंत्र - 2/21,36.
5. वही, 3/96

   जपन् भुक्तिश्च मुक्तिश्च लभते नात्र संशयः।

कुण्डलिनी शक्ति सामान्यतया मेरूदण्ड के सबसे नीचे प्रसुप्त अवस्था में रहती है। साधक के प्रयास एवं आध्यात्मिक गुरु की अनुकम्पा से यह जाग्रत हो उठती है और परमतत्त्व से मिल जाती है। जो कि मस्तिष्क के सर्वोच्च केन्द्र सहस्रार चक्र में निवास करता है।[1] 'कुण्डलिनी शक्ति' शब्द का प्रयोग जीव की आध्यात्मिक शक्ति या ऊर्जा को दर्शाने के लिए किया जाता है।

तांत्रिक साधना की सर्वप्रमुख विशेषता यह है कि तन्त्रों में क्रिया और भावना के समन्वय का निर्देश किया गया है। यहाँ यह वेदान्त से इस अर्थ में भिन्न है कि वेदान्त कहता है–'ब्रह्म साक्षात्कार ध्यान' (भावना) के द्वारा प्राप्त हो सकता है। जीव और शिव की एकता का उद्घोष करते हुए तंत्र वेदान्त के इस प्रकथन से–जीव का शिवत्व एक स्थापित तथ्य है–असहमत है। तंत्र का कहना है कि शिवत्व की प्राप्ति साधना के द्वारा होती है।[2]

तंत्रों में मंत्रों को विशेष महत्व प्रदान किया गया है।[3] देवता का तादात्म्य मंत्र के साथ है, जो कि मुक्ति का अमोघ साधन है। तंत्रों का विश्वास है कि मंत्र शाश्वत हैं, जिन्हें शब्द–ब्रह्म रूप में निर्दिष्ट किया गया है। बीजमन्त्र कोरे शब्द नहीं हैं, अपितु गम्भीर प्रबोधन के समय ये साधक के लिए परमशक्ति (सत्ता) के केन्द्रीभूत चिन्तन का रहस्योदघाटन है। यहाँ मंत्र जाप का विशेष विधान किया गया है।[4]

तंत्रों का उपासना पर विशेष जोर है। ऐसा प्रतीत होता है कि यह तत्त्व पुराणों से लिया गया है।[5] पुराणों की ही भाति तंत्रों में भी देवता की उपासना एवं उसके सम्मान में किया गया मंत्रपाठ महत्त्वपूर्ण विशेषताओं

---

1. ब्रह्मा (एन. के.) वही, पृष्ठ 227
2. कुलार्णव तंत्र - 9/43.
3. ब्रह्मा (एन. के.) वही, पृष्ठ 278
4. महानिर्वाण तंत्र - 5/33
5. ब्रह्मा (एन. के.) वही, पृष्ठ 278

को निर्मित करते हैं। ध्यानावस्था में उपासक स्वयं का तादात्म्य देवता से करता है। वह उपासना करता है[1] और स्वयं से पहले देवता के पूर्ण विकसित अवस्थिति को लक्ष्य के रूप में रखता है, जिसका कि अनुभव किया जाना है। हम देखते हैं कि तंत्र के मत में जीव और शिव के बीच तादात्म्य का वह अनुभव ही सर्वोच्च आदर्श है।[2]

तंत्र साधना की तीन भिन्न अवस्थाओं को स्वीकार करता है–शुद्धि, स्थिति और अर्पण। इसे अस्पष्ट रूप में कर्म, भक्ति और ज्ञान कहा जा सकता है।[3] व्यक्ति (जीव या साधक) को विभिन्न प्रक्रियाओं से इस क्रम में अनुभव करते हुए गुजरना होता है कि वह अपने को शुद्ध कर सके। यह शुद्धता की भावना (ध्यान) और क्रिया–दोनों के द्वारा प्राप्त की जाती है अर्थात् मन और शरीर-दोनों के सद्भावपूर्ण कार्यों (प्रयासों) के द्वारा। शिव की सच्ची उपासना केवल उसी हृदय से की जा सकती है, जो सम्पूर्ण अशुद्धियों से रहित होकर निर्मल हो चुका हो। अन्तिम अवस्था पूर्ण समर्पण होती है–परम विलय और एकता की। इस अवस्था में जीव शक्ति के तादात्म्य शिवशक्ति से हो जाता है। इस स्थिति में कोई उपासना, कोई भेद नहीं रहता। रहता है तो केवल आनन्द-शाश्वत और असीम।[4]

वास्तव में तंत्र हिन्दुओं के सभी धर्मग्रंथों का सार रूप है। यह अपनी परिधि में साधना के विभिन्न रूपों की सभी महत्वपूर्ण विशेषताओं को समेटे हुए है। तंत्रवाद अति प्रारम्भिक प्रकार के कार्यों का निर्देश करता है तथा उनके अनन्त विवरणों, विशेष बातों को द्योतित करता हुआ प्रतीत होता है। इसमें जीव ओर परम सत्ता के तादात्म्य के ध्यान का निर्देश है। इस प्रकार यह हमें उपनिषदों के उच्च अनुभवातीत (इन्द्रियातीत) दर्शन

---

1. गन्धर्व तत्र - 8/22
   देव एव यजेद्देवं नादेवो देवमर्चयेत्।
2. शक्ति संगम तंत्र, काली खण्ड - 1/130-31
   कालीरूपात्मानं विभावयेद्।
3. ब्रह्मा (एन. के.) वही, पृष्ठ 282, मातृकाभेद तंत्र 12/44,3/39
4. शक्तिसंगम तंत्र-सुन्दरी खण्ड - 2/136-37

की याद दिलताा है।[1] इसमें मनुष्य जीवन के संचालन के लिए विभिन्न विधियों एवं नियमों का निर्देश किया गया है—चाहे व्यक्ति के साधन एवं उसकी क्षमता विभिन्न प्रकार की ही क्यों न हो। यह साधकों को उसकी योग्यता के आधार पर तीन वर्गों में विभक्त करता है—पशु, वीर और दिव्य।[2] पशुसाधक वह व्यक्ति हैं जिसने आत्म नियंत्रण नहीं प्राप्त किया है किन्तु वह अपने मनोविकार एवं मनावेगों को वश में करने की चेष्टा कर रहा है। वीर वह साधक है जिसने पूर्ण आत्मनियंत्रण प्राप्त कर लिया है तथा उसे अतिदुःखदायी एवं लुभाविनी परिस्थिति में भी आत्मबोध बना रहता है। उसे न केवल अनुमति है बल्कि अनिवार्यरूप से निर्दिष्ट किया गया है कि वह देवता के अर्ध्य सामग्री में मदिरा, मांस आदि पदार्थ भी समाविष्ट करे।[3] जबकि पशु साधक को इसे देखना या छूना तक मना है, अनुमति प्रदान करना तो दूर की बात है। वीर या कौल के लिए जिन विधियों का प्रावधान है, वह खतरों से घिरा हुआ है।[4] यह किसी साँप को पकड़ने या किसी बाघ के गले को बाँधने से भी ज्यादा खतरनाक है। दिव्य साधक को वीर साधना के परीक्षण पथ पर चलने की आवश्यकता नहीं पड़ती। उसे उपासना की अपनी क्रिया में इन पंच तत्त्वों के प्रतिस्थानापन्न वस्तुओं का प्रयोग करने की अनुमति प्राप्त है। उसे अपनी आध्यात्मिक भावनाओं को उद्दीप्त करने के लिए बाह्य बस्तुओं की सहायता की जरूरत नहीं पड़ती। उसे ध्यानपूर्ण अवस्था का अभ्युदय स्वतः होता है। साधकों के इस वर्गविभाजन से अलग तंत्र में कौलाचार का भी वर्णन है। जिसमें सर्वोच्च अवस्था की स्थिति रहती है तथा यह शास्त्रों के सभी नियमों एवं निषेध आज्ञाओं से परे है। कौल उपासकों के लिए न तो कोई विधि है और न कोई निषेध, न योग्यता है और, न अयोग्यता, न पाप है और न पुण्य।[5]

---

1. ब्रह्मा (एन. के.) वही, पृष्ठ 290
2. महानिर्वाण वंत्र - 1/51-53
3. महा निर्वाण तंत्र - 1/57.
4. कुलार्णव तंत्र - 2/122.
5. महानिर्वाण तंत्र - 4/36-45

तंत्र के अनुसार प्रत्येक साधक को अपनी क्षमता एवं योग्यता के अनुसार विकास के अपने ही मार्ग पर अग्रसर होना चाहिए।[1]

तांत्रिक साधना की प्रबलता पुराणों के बाद ही स्थापित हुई। यद्यपि कुछ तंत्र निश्चित रूप से पुराणों से प्राचीन हैं। साधना का भक्ति रूप के आधार के रूप में तंत्रों का दर्शन पुराणों के द्वारा ही प्रतिष्ठित हुआ है।[2] पौराणिक एवं तांत्रिक शिक्षा में बहुत अधिक साम्यता है। अतः इन्हें साधना के दो रूपों में प्रस्तुत करना अनुचित जान पड़ता है। तंत्रों के शिव और शक्ति की एकता का वर्णन पुराणों में भी मिलता है।[3] शब्द और अर्थ के बीच शाश्वत सम्बन्ध एवं परमात्मा के दो पहलू के रूप में शब्दब्रह्म एवं परब्रह्म के सम्बन्ध में तंत्र शास्त्र में विशेष बल दिया गया है। इसकी प्रतिध्वनि पुराणों में भी सुनायी पड़ती है। देवी के साथ-साथ उपासक की तादात्म्यता का सिद्धान्त भी वर्णित है।[4] वास्तव में पुराणों और तंत्रों में लगभग समान दर्शन एवं ब्रह्मानुभूति की समान विधियों का प्रतिपादन किया गया है। दोनों उपासना एवं कर्मकाण्ड की महत्ता पर बल देते हैं। दोनों में भक्ति एवं उपासना पद्धति का उपदेश दिया गया है। तथा दोनों के देवगण भी समान हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि उपनिषदों के दर्शन को तथा पुराणों की व्यावहारिक साधना को स्वीकार करके तंत्र साहित्य ने उपनिषदों एवं पुराणों के बीच समन्वय स्थापित किया है।

उपासना का दूसरा रूप है—प्रतीकोपासना जिसमें एक विशेष रूप पर ध्यान दिया जाता है। इसमें एक प्रतीक को वस्तु के प्रतिनिधि के रूप में स्वीकार किया जाता हैं जैसे मस्तिष्क जीव (अवयव संस्थान) का केन्द्र के रूप में है। उसी प्रकार यह प्रतीक जगत् के स्रोत के रूप में व्यवहृत

---

1. मातृका भेद - तंत्र - 14/3-10
2. ब्रह्मा (एन. के.) हिन्दू फिलॉसोफी पृष्ठ 81.
3. शक्ति संगम तंत्र, सुन्दरी खण्ड - 4/55 देवी भागवत - 7/15-16
4. कुलार्णवतंत्र - 9/42

होता है। अतः इसकी उपासना का अर्थ है प्रत्येक वस्तु की उपासना। यहाँ स्रोत को खोजा जाता है तथा इसी स्रोत पर उपासना को केन्द्रीकृत किया जाता है। यहाँ हम अनेक से एक की ओर संक्रमण पाते हैं। शीघ्र ही विभिन्न दिशाओं में बहुविध गतिविधियों की आवश्यकता नहीं रहती। अब तक तो सभी क्रियाएँ केन्द्र यानी प्रतीक की ओर मुड़ जाती हैं। प्रतीक उपासना–भक्ति उपासना के सभी रूपों–वैष्णव, शैव और शाक्त की एक सामान्य विशेषता है। यह प्रतीक श्रद्धा, उपासना एवं प्रेम के सभी दिलचस्प विषयों को संकेतित करता है। यही जगत् का स्रष्टा, पालक और विध्वंसक है तथा यह सर्वदा सबमें (सब वस्तु में) वर्तमान है। यहाँ ध्येय पर बल दिया जाता है तथा यह प्रमुख रूप से उद्देश्यपूर्ण साधना है।

उपासना का अर्थ है उपासक एवं उपास्य के बीच एक निकट सम्पर्क, एक आत्मीय सम्बन्ध, एक सामीप्य, एक सन्निधि या दो स्तरों का तादात्म्य।[1] अहंग्रह उपासना, जिसमें दो की पहचान रहती है, कल्पित उपलब्धि की सर्वोच्च अवस्था के रूप में स्वीकार किया जाना चाहिए। भक्ति सम्प्रदाय (चाहे वह इस देश में हो या पाश्चात्य देशों में हो) के सभी अनुयायियों ने उपासना या प्रेम सम्बन्ध के लिए द्वैत की अनिवार्यता को स्वीकारा है। किन्तु कम से कम सिद्धान्ततः द्वैत की सूक्ष्म भावना भी सर्वोच्च अनुभूति के लिए हानिकर है। यदि यह सत्य है कि जितना अधिक हम आदर्श के निकट पहुँचते हैं, पहले से अधिक ही हम उसे समझ सकते हैं तथा समान व्यक्ति या वस्तु को प्रेम करते हैं। केवल यह तर्कणा अधिक विश्वसनीय प्रतीत होती है कि सर्वश्रेष्ठ प्रेम ओर ब्रह्मानुभूति (उपलब्धि) का अभिप्राय एक अवस्था से है, जहाँ उपासक एवं उपास्य के बीच थोड़ा अनुराग शेष नहीं रहता। द्वैत भाव के लिए यहाँ जगह ही नहीं होती। तंत्र में इसी सिद्धान्त को ग्रहण किया गया है। उसकी घोषणा है कि स्वयं शिव होने के बाद ही केवल शिव की उपासना सम्भव है। यद्यपि ये शंकर की तरह निरपेक्ष एकेश्वरवाद की वकालत नहीं करते। जिस देवता की उपासना की जानी है उसका ध्यान उपासना से पहले आता है तथा ध्यान की प्रक्रिया में साधक स्वयं का देवता के साथ तादात्म्य स्थापित करता है।

साधना का मार्ग भक्ति, ज्ञान एवं कर्म के मध्य में अवस्थित है। यह कर्म के समान नहीं है कि निम्न प्रयोगों पर सम्पूर्ण रूप से आश्रित रहे तथा निम्नतर के द्वारा उच्चतर पर नियंत्रण करने की कोशिश करे। न ही यह ज्ञान के समान है कि अकेले तर्क के अनुभवातीत प्रक्रियाओं पर निर्भर रहे। यह प्रेम की पवित्र भावना के द्वारा मनुष्य के चैतन्य को ऊपर उठाना चाहता है, जो सभी मनोविकारों एवं मनोवेगों को धीमा कर देता है। प्रेम सभी उच्चता को प्रतिष्ठित कर सकता है तथा तर्क-बुद्धि भी नियंत्रित कर सकती है। यह सब अधिक परिश्रम से नहीं, अपितु सहज एवं स्वाभाविक रूप से होता है।

भक्ति नियमों के साथ प्रेम, विधि (अनिवार्य धर्मविधि एवं प्रक्रियाएँ) के साथ राग को संयुक्त करता है और इस प्रकार यह शरीर उसको प्रक्रियाओं से मदद करना चाहता है। मधुसूदन सरस्वती का यह सही सर्वेक्षण है कि भक्ति, कर्म एवं ज्ञान दोनों से निकट रूप से बँधी है तथा यह सभी बाधाओं को दूर करती है। साधना के दोनों रूपों का समन्वय करती हुई यह उच्चतर का नियंत्रण, निम्नतर एवं उच्चतर दोनों के द्वारा करती है। यह अपने लक्ष्य को भी शीघ्र ही प्राप्त करती है।

वेदों के बहुदेववाद एवं कर्मकाण्ड के विस्तृत विवरण के प्रतिक्रिया स्वरूप उपनिषदों का अविस्तृत एवं मौन बुद्धिवाद तथा निरपेक्ष एकेश्वर वाद की प्रतिष्ठापना हुई।

उपनिषद् युग की इस आत्यंतिक बुद्धिवाद एवं उच्च निरपेक्ष दर्शन ने लोगों को एक और अधिक निश्चित सिद्धान्त खोजने के लिए प्रेरित किया, जो उनकी भावनाओं के साथ-साथ उनकी औसत बोद्धिक क्षमताओं को भी अवधारणा देकर तथा भक्ति उपासना पद्धति की दृष्टि देकर उनकी इस इच्छा को पूरा किया। पुराणों में प्रथम बार त्रिदेव-ब्रह्मा, विष्णु और शिव प्रभावशाली ढंग से प्रकट होते हैं तथा प्रत्येक का समादर किया गया है। वह सर्वोच्च देवता के रूप में प्रतिष्ठित हुआ, जिसका सम्पूर्ण जगत् पर शासन है तथा जो सभी जीवों की नियति है। यहाँ देवता की कल्पना एक सीमित शक्ति या शक्तियों के रूप में नहीं की गई। न ही वह इन्द्रियातीत

ब्रह्म या उपनिषद् का बौद्धिक आदर्श है। वह सभी जीवों के हृदय में निवास करता है तथा अन्तर्यामी निरीक्षक की भान्ति उसकी नियति तथा क्रिया का नियन्ता है। उसकी अनुमति बुद्धिवादियों की दार्शनिक तर्क-वितण्डा से नहीं होती, अपितु भक्ति से होती है। वह केवल सर्वज्ञ और सर्वशक्तिमान नहीं है, बल्कि वह सर्वदयालु भी है। अपने जीव-जन्तुओं (अनुयायियों) के प्रति असीम करुणा के कारण वह सीमित मानव-जीवन के स्तर तक नीचे उतरता है तथा उसके हाथों को अपने वरद स्थान तक ऊपर उठाता है। सर्वशक्तिमान परम एवं पूर्ण के रूप में उसे किसी वस्तु की आकांक्षा नहीं है। उसे बलिदान या उपहार, उपासना या प्रार्थना, मंत्र या कर्म—किसी भी साधन के द्वारा जीता नहीं जा सकता। सर्वदयालु एवं सभी मनोकामनाओं को पूर्ण करने वाले के रूप में वह जीव की धार्मिक प्यास को संतृप्त करने के लिए तब तब अवतरित होता है, जब जब साधक ऐसा गम्भीर एवं उत्कण्ठापूर्ण रूप से महसूस करता है। इस प्रकार भगवान् की सुगमता सं प्राप्ति केवल भक्ति के द्वारा ही हो सकती है।

पुराणों में देवताओं के अनेक मूर्त अवतारों के जन्म एवं कार्यों के बारे में नानाविध अनुश्रुतियाँ वर्णित हैं। स्पष्टतया इन अनुश्रुतियों का उद्देश्य जनसाधारण के ध्यान को आकर्षित करना है। तथा उन्हें सामान्य कथाओं के माध्यम से धार्मिक ज्ञान के विपुल परिमाण का उपदेश देना है। यथार्थतः वे किंवदन्तियाँ गहरे आध्यात्मिक सत्य का द्योतन करती हैं, जिसका अनावरण किंवदन्तियों में वर्णित प्रतीकों के आन्तरिक अर्थों पर केन्द्रित ध्यान के द्वारा होता है। मिथक अनियंन्त्रित कल्पना की उपज नहीं है, जिसकी अवधारणा जीवन के बचपन में निर्मित होती है। बल्कि यह उचित आध्यात्मिक अनुभव की उपलब्धि का द्योतन करता है तथा यह भी द्योतित करता है, कि इसकी उपलब्धि सर्वदा विशिष्ट विधियों के द्वारा हो सकती है तथा जो विशेष प्रायोगिक प्रदर्शन करने में भी सक्षम हैं। देवी ओर देवताओं के रोमांश की प्रतीकात्मकता, जैसा कि पुराणों में वर्णित है, का उद्देश्य लोगों को ऊपरी तौर से उनके मोहक एवं सरल विषयक्रमों के द्वारा आकर्षित करना मात्र है।

अध्याय 9

शाक्त-धर्म में नरबलि या आत्मा बलिदान

मनुष्य की बलि (नरबलि) या मनुष्य के मांस के अर्पण का उल्लेख ऋग्वेद[1] ऐतरेय ब्राह्मण,[2] वाजसनेयि-संहिता[3] तथा शतपथ ब्राह्मण[4] में अश्वमेध यज्ञ के अनुष्ठान के समय मिलता है। वध किया जाने वाला व्यक्ति न तो पुरोहित होता था और न ही दास। बल्कि वह एक योद्धा या किसी तीसरी जाति (क्षत्रिय या वैश्य) का व्यक्ति होता था।[5] महाभारत में एक आख्यान मिलता है, जिसके अनुसार जरासन्ध ने सौ राजाओं को कैद कर रखा था तथा पशुपति के मन्दिर में उनके बलिदान की पूरी तैयारी कर चुका था।[6]

पौराणिक साहित्य में मनुष्यबलि के प्रचलन के सम्बन्ध में दृष्टान्त या उपदेश भरे पड़े हैं। पद्मपुराण कहता है कि कैसे द्वापर में दीनानाथ नामक एक राजा को गालव ने सुझाव दिया था कि पुत्र की प्राप्ति के लिए वह मनुष्यबलि का अनुष्ठान करे।

1. ऋग्वेद - 1/24
   वही पुरुष सूक्त - X/90.
   विल्सन आर.वी. I, पृष्ठ 60
   म्यूर (Muir) Q .S.T.J.-355,407, 413
   मैक्समूलर-एन्सिएन्ट संस्कृत लिटरेचर, पृष्ठ 408
2. ऐतरेय ब्राह्मण
3. वाजसनेयि संहिता - XXX
   तैत्तिरीय संहिता - III/4
   सांख्यायन श्रौत सूत्र - XVI/10-16
4. शतपथ ब्राह्मण - XIII/III/6/5.
5. वेवर-एपिशे इन वैदिशै रिचुअल, पृष्ठ 277
6. महाभारत - III/81/33,XIII/49/42.

इसी तरह कालिका पुराण[1] में भी मनुष्यबलि के अनुष्ठान के सम्बन्ध में रोचक विवरण प्राप्त होता है। देवी के सामने बलि वाले (मनुष्य) बैठाकर उपासक को उसकी आराधना, पुष्प, चन्दन की लेई, छाल तथा बलिदान के उपयुक्त बारंबार (सतत्) मंत्रोच्चार के द्वारा करनी चाहिए।[1] तब उत्तर की ओर मुख करते हुए तथा अन्य व्यक्ति को पूर्व की ओर मुंह करते हुए उसे पीछे देखना चाहिए तथा इस मंत्र का जाप करना चाहिए–"ओ नर! (मनुष्य!) सौभाग्य के द्वारा तू जल्दी से बलिपुरुष के रूप में प्रकट हुआ है इसलिए मैं तेरे सामने एवं बलि के रूप में तुम्हें नमन करता हूँ। चण्डिका के प्रसन्न होने पर तेरे सभी पापों का अन्त हो जाएगा। तू एक बलि के रूप में प्रकट हुआ है तथा वैष्णवी देवी से मिलेगा, जो कि दाता के लिए सर्वश्रेष्ठ है। तू मेरा नमन शीघ्र स्वीकार कर। बलिदान के लिए धन्य व्यक्ति जन्म से ही अपने आपको इस रूप में प्रस्तुत करते थे। अतः बलिदान के रूप में बध कोई हत्या नहीं है।" इस प्रकार मनुष्य के रूप में बलि का ध्यान करते हुए उसके सिर पर एक पुष्प इस मंत्र के साथ फेकना चाहिए–"ओ कृपाण! तू ही चण्डिका की जिह्वा है तथा देवताओं को उनका क्षेत्र प्रदान करती है। तू काली वर्णा है; तथा त्रिशूल धाारिणी है। तू सृष्टि की अन्तिम विकराल रात्रि के समान है। तेरा जन्म भयानक है, तुम्हारी आँखें और मुँह लहुलुहान हैं तथा तू खून से लाल एक हार पहनी हुई है। तुम्हें नमन है।" कृपाण का इस तरह अभिषेक करने के बाद उसे साथ में ले लेना चाहिए तथा इस मंत्र का जाप करना चाहिए–'ॐ हुम् फट्' तथा श्रेष्ठ बलि का इसके द्वारा बलिदान करना चाहिए। उसके बाद बलि कृत व्यक्ति के लहू का छिड़काव सावधानी पूर्वक जल, सेंधा नमक, मधु, सुगन्ध एवं पुष्पों पर करना चाहिए। तब इसे देवी के

---

1. कालिका पुराण - 71/80-83
   नरवर्य महाभाग सर्वदेवमयौत्तम्।
   रक्ष मां शरणापन्नं सपुत्रपशुबान्धवम।।
   रक्ष परित्यज्य प्राणान् मरणे नियते सति।
   महातपोभि ज्ञानैश्च यज्ञैर्यत्प्राप्यतेऽमृतम्।।
   तन्मे देहि महाभाग त्वं चापि प्राप्नुहि श्रियम्।।

आगे रखना चाहिए। साथ ही व्यक्ति का कपाल (सिर) भी, जिस पर एक दीप जल रहा हो, इस मंत्र के साथ देवी के आगे रखना चाहिए–"ॐ ऐं, ह्रीं, श्रीं, कौशिकी तू इस लहू से प्रसन्न हो।"[1]

पशुओं एवं मनुष्यों के बलिदान के सम्बन्ध में पुनः कहा गया है कि–पक्षी, कछुआ, ऐलिगेटर, मछली (मत्स्य), जंगली पशुओं की नौ प्रजातियों, साँढ, भैंसा, बकरा, नेवला, जंगली भालू, गैंडा, हिरण, गोह (गोधा), रेन्डियर, सिंह, बाघ तथा मनुष्य।[2] एवं साधक के अपने शरीर का रक्त, देवी चण्डिका[3] के लिए उपयुक्त बलि सामग्री है। एक मनुष्य के बलिदान से देवी एक हजार वर्ष तक प्रसन्न रहती है।[4] तथा तीन पुरुषों के बलिदान से उसकी प्रसन्नता एक लाख वर्ष तक बनी रहती है।[5]

संस्कृत का प्रसिद्ध कवि बाणभट्ट मनुष्य के मांस की बिक्री का उल्लेख करता है।[6] भवभूति के मालतीमाधव में वृतान्त है कि कैसे नायक माधव श्मसान के पिशाचों को मनुष्य का मांस अर्पित करके उसकी सहानुभूति प्राप्त करना चाहता है। तथा अपने प्रेयसी मालती के प्राणरक्षा के लिए ठीक उस समय चामुण्डा के मन्दिर में आ जाता है, जब पुरोहित अघोरघण्ट एवं उसका अनुचर, कपाल कुण्डला मालती का देवी के समक्ष बलिदान करने के लिए तत्पर रहता है।[7] यह पहला उदाहरण है, जहाँ एक

---

1. कालिका पुराण - 71/20-46.
2. एशियाटिक रिसर्चेज - IV (1897), 371.
3. कालिका पुराण - 71/3-7
4. वही - 71/7,48
   नराणामपि शौणितैः। नरं चापि स्वगात्ररुधिरं तथा।
5. वही -71/18-19
   नरेण बलिना देही सहस्त्रम्परिवत्सरान्।
   विधिदत्तेन चाप्नोति तृप्ति लक्षं जन्मभिः।।
   नारेनैवाथ मांसेन त्रिसहस्त्रंच वत्सरान्।
   तृप्तिमाप्नोति कामाख्या भैरवी कामरुपधृक्।।
6. हर्षचरित, पृष्ठ - 92
7. मालतीमाधव - V /21-22

स्त्री का बलिदान दिया जा रहा था। सोमदेव के कथासरित्सागर में देवी चण्डिका या चामुण्डा को प्रसन्न करने के लिए अनेक नरबलियों का विवरण मिलता है। एक मुरुवर, एक तुरुष्क या इण्डोसिथियन अपने मृत पिता की याद में एक नरबलि का इरादा करता है। एक राजा की जान बचाने के लिए चण्डिका के निमित प्रायश्चितिक नरबलि का भी वर्णन दृष्टिगोचर होता है।[1]

1. भागवत पुराण में जडभरत का चण्डिका के निमित्त बलिदान दिया जाना था।[2]

2. महाभागवत पुराण में रावण देवी को नरमांस के द्वारा संतुष्ट करता है।[3]

3. अहिरावण राम और लक्ष्मण का अपहरण करके देवी को उनकी बलि चढ़ाना चाहता था।[4]

तांत्रिक साहित्य में नरबलि के स्वीकृत एवं अस्वीकृत (भ्रष्ट, पापी)–दोनों रूपों का वर्णन हुआ है। इस उपासना पद्धति के अनुपालन के अनेक उदाहरण मिलते हैं। लगभग ब्रिटिश शासन के प्रारम्भ तक तंजौर के काली मन्दिर में प्रत्येक शुक्रवार को एक नरबलि दी जाती थी।[2] अनेक राजाओं एवं सेनापतियों ने काली के मन्दिर में बलिदान का अनुष्ठान किया। मराठा शासन इस उपासना पद्धति के जोशीले-प्रेक्षक थे। कहा जाता है कि 1890 ई. में बस्तेव में दन्तेस्वेनि के प्रसिद्ध मन्दिर में राजा के द्वारा केवल एक अवसर पर पच्चीस व्यक्तियों की बलि दी गई। यह उपासना-पद्धति उत्तरवर्ती भारत में भी प्रचलित थी। कूच बिहार नरेश नरनारायण के द्वारा लगभग डेढ़ सौ व्यक्तियों की बलि दी गई (16वीं सदी)। हफ्ट उक्लिम का कहना है कि कूच बिहार के भोज लोगों को कभी-कभी बलि योग्य

1. कथासरित्सागर, क्रुक - Vol. II 168
2. भागवत पुराण - V /9/12, V/26/31.
3. महाभागवत पुराण - 38/1-55
4. E R F VI, पृष्ठ 850

व्यक्ति के रूप में इस्तेमाल किया जाता था।[1] जैनताई परगना में भी इस प्रथा का प्रचलन था। यहाँ कटे हुए सिर को सोने की थाली में रखकर देवी को अर्पित किया जाता था तथा फेफड़े को पकाया जाता था। वहाँ वर्तमान कन्द्रा योगी इसे खाते थे। राजकीय परिवार भी इस खून में पके चावल की अल्प मात्रा ग्रहण करते थे। स्वैच्छिक (संकल्पित) बलिप्रदेय व्यक्ति के अभाव में अन्य व्यक्तियों का सचमुच में अपहरण कर लाया जाता था।[2]

बोगेल का निरीक्षण है कि दक्षिण भारत की मूर्तियाँ इस बात पर प्रकाश डालती हैं कि देवी को अपने सिर की बलि देकर आत्मबलिदान की प्रथा का प्रचलन था।[3] चुनिय एवं उनके उत्तराधिकारी अहोमों ने इस उपासना-पद्धति का बड़े पैमाने पर प्रचलन जारी रखा। छोटानागपुर पठार के द्रविड जनजातियों में भी यह प्रथा प्रचलित थी। कोढ़ विपत्ति एवं व्याधि से बचने के लिए एवं सफलता प्राप्त करने के लिए तथा विशेष रूप से सफलता एवं अच्छी फसल सुनिश्चित करने के लिए पृथ्वी देवी को बलि अर्पित करता था।[4] यह प्रथा नागा पहाड़ियों की मंगोलाई जनजातियों के अनेक लोगों में तथा पतकोई में भी प्रचलित थी। पुनः भूमिज बच्चों का अपहरण करने लगे एवं अपनी देवी रंकिनी के मन्दिर में उनकी बलि देते थे। मुयुय ठाकुरानी माई के समक्षबलि देते थे। मैलकम कहता है कि कर्बदा ब्राह्मण की बलि देते थे।[5] सिक्खों का कहना है कि 17वीं सदी में महान सुधारक गुरुगोविन्द ने दुर्गा को अपने एक शिष्य की बलि दी थी। तदनन्तर युद्ध के अभियान के लिए अपने आपको तैयार किया था।[6] कहा

1. E R F VI, p. 83
2. वही
3. बुलेटिन ऑफ द लण्डन स्कूल ऑफ ओरिएन्टल स्टडीज - VI, pp- 539-43, पल्लवाग, pp . 182 ff
4. E.R.E. VI, पृष्ठ 850
5. केम्पवेल, नोट्स - 339, विल्सन, इण्डियन कासट - 235, बाम्बे गजेटियर, X114
6. T Jruscipp द आदिग्रन्थ, इन्ट्रोडक्सन पृष्ठ XC

जाता है कि 1861 में जयपुर में विजयपट्टम के निकट एक राजा ने दुर्गा देवी को एक लड़की की बलि प्रदान की थी।[1]

स्वयं अपने रक्त का अर्पण

प्राचीन काल से ही काली को अपने खून की बलि देने की प्रथा प्रचलित थी। कालिका पुराण एवं परवर्ती परम्पराओं में ऐसा विवरण देखा जाता है। मुरडाक का निरीक्षण है कि बंगाल में शायद ही कोई ऐसा प्रतिष्ठित घर हो, जिसकी गृहिणी ने एक बार या अन्य किसी बहाने अपनी लहू का देवी को संतुष्ट करने के विचार से अर्पण न किया हो।[2] काली को जो उड़हुल का फूल अर्पित किया जाता था, वह सम्भवतः उपरोक्त प्रथा की याद दिलाता है।[3] इस प्रथा के लिए सारांशतः इस प्रकार व्यक्त किया जा सकता है–'जब भी पति या पुत्र भयानक रूप से रोग ग्रस्त होता है तो एक प्रतिज्ञा की जाती है। वह यह कि रोगी के रोगमुक्त होने पर मनुष्य के खून से देवी को प्रसन्न किया जाएगा। इस प्रतिज्ञा को या तो अगले दुर्गापूजा या तत्क्षण काली के किसी मन्दिर में पूरा किया जाता है। पन्ती या माँ कुछ निश्चित समारोह के अनुष्ठान के बाद 'नेलकटर' के द्वारा अपने स्तन में छिद्र करके रक्त निकालती है तथा उसे देवी को अर्पित करती है।[4]

रहस्यमयी शक्ति का आरोपण

क्रुक का निरीक्षण है कि धार्मिक अनुष्ठान के कुछ रूप ऐसे हैं, जो इस बात पर निर्भर करते है कि विभिन्न मायाजाल एवं काला जादू में मनुष्य के मांस एवं रक्त में रहस्यमयी शक्ति का आरोप रहता है।[5] इस सम्बन्ध में कथासरित्सागर में कुछ रोचक कथाएँ हैं। वर्णन है कि एक बार जब जादूगरनी/डायन हवा में तैर रही थी तो कहती है–'ये सब जादूगरनी

---

1. बॉल, जंगल लाइफ - पृष्ठ 510
2. पेने, द शाक्ताज - पृष्ठ 13
3. वुडरफ, शक्ति एण्ड शाक्त - पृष्ठ 115
4. E.R.E.,VI, पृष्ठ 853
5. क्रुक O P Cit Vol..II 171

(डाइन) की जादूई शक्तियाँ हैं, मोहनी रूप है और यह सब मनुष्य के माँस के भक्षण की परिणति है। एक दूसरे अवसर पर वर्णन मिलता है कि एक नायक कुछ नरमांस के बदले पाजेब सहित एक स्त्री का विनिमय करता है।[1]

ऐसा समझा जाता था कि मनुष्य के खून में स्नान करने पर व्यक्ति रोग से मुक्त हो जाता है। सोमदेव एक कथा में कहता है कि एक गर्भवती रानी अपनी लालसा को पूर्ण करने के लिए अपनी पति से कहती है, कि वह उसके लिए एक टैंक को खून से भर दे, जिसमें वह स्नान करेगी।[2]

एक राजा की हत्या

गोल्डेन बघ इस प्रथा के निरीक्षण की अनेक कथाएँ कहता है। इस प्रकार की एक प्रथा एक बार कालीकट में प्रचलित थी। जहाँ राजा अपने बारह बर्षों के शासन के बाद लोगों के बीच अपना गला काटकर अनुगृहीत होता था, किन्तु 17वीं सदी में इस नियम में परिवर्तन हो गया।[3] देवी भागवत पुराण यद्यपि एक शाक्त कृति है, फिर भी इसमें देवी को अपने खून की बलि चढ़ाने की आलोचना[4] एवं निन्दा की गई है।[5]

बहुत पहले से ही हमारे देश में परलोक में धार्मिक पुण्य की प्राप्ति के लिए देवी या देवता को अपने खून की बलि चढ़ाने की प्रथा एक प्रतिष्ठित परम्परा रही है।[6] हाँ शाक्त सम्प्रदाय के कर्मकाण्डों में स्पष्टरूप से उपासकों को निर्दिष्ट किया गया है कि वे अपना मांस और रक्त महान/परम

---

1. टाउनी, कथासरितसागर -I, 157, 214
2. क्रुक - I , O P Cit II, पृष्ठ 173-74
3. E. R. E. पृष्ठ 853 cf. वोयेजेज एण्ड ट्रेभल्स (लण्डन, 1811) VIII-374
4. देवी भागवत पुराण - VIII/23/10
5. वही - V /35/ 28-29
6. यू. एन. घोशाल-स्टडीज इन इण्डियन हिस्ट्री एण्ड कल्चर - पृष्ठ 479
1. मार्कण्डेय पुराण - XC III/7-11

देवी को अर्पित करे।[1] मार्कण्डेय पुराण में एक कथा है कि कैसे राजा सुरथ एवं एक व्यापारी/सौदागर देवी प्रतिमा की स्थापना एवं देवी को प्रसन्न करने के लिए अपने शरीर के खून से तर-बतर अनेक नैवेद्य अर्पित करता है।[2] इस प्रकार देवी प्रसन्न होकर उनके समक्ष प्रकट होती है और उसकी मनोकामनाओं को पूर्ण करती है।[3]

कालिका पुराण में कहा गया है कि अपने शरीर के रक्त की बलि के द्वारा देवी सहस्र वर्ष तक प्रसन्न रहती है। तथा अपने निकटतम व्यक्ति के मांस की अल्पमात्रा के अर्पण के द्वारा केवल छः माह में ही देवी सभी इच्छाओं को पूर्ण करती है।[4] तंत्रसार में उद्धृत कुमारी तंत्र का कहना है कि जो भी व्यक्ति अपना रक्त अर्पित करेगा, उसे राजसत्ता का वरदान मिलेगा।[5]

प्राणतोषणी तन्त्र में उद्धृत महामंत्र के मत्स्यसूक्त में उपासक के द्वारा देवी को अपना रक्तदान सहित विभिन्न प्रकार के रक्त बलिदानों के गुणों की तुलना की गई है।[6] यह सामान्य ज्ञान की बात है कि इस समय तक हमारे बंगाल की धर्मनिष्ट स्त्रियाँ देवी को अपने वक्षस्थल के खून की बलि चढ़ाती हैं।[7]

देवी भागवत पुराण - V/35/ 28-29
जुहावासौ निजं मासं छित्वा पुनःपुनः।
रुधिरेण बलिं चास्ये दद्युस्तौ कृतौह्ननौ।।
कालिका पुराण अ. - 71

2. देवी माहात्म्य - XIII/9-12
निराहारौ यताहारौ तन्मनस्कौ समहितौ।
ददतुस्तौ बलिं चैव निजगात्रसृगुक्षितम्।।
3. वही - XIII/14-18
4. कालिका पुराण - XVIII/172, 184-185
5. तंत्रसार, बंगवासी - ed. पृष्ठ 933-34
6. प्राणतोषणी तंत्र- पृष्ठ 285
7. यू.एन. घोशाल - स्टडीज इन इण्डियन हिस्ट्री एण्ड कल्चर - पृष्ठ 482

यहाँ यह तथ्य रोचक है कि शाक्त सम्प्रदाय के इस धार्मिक कृत्य के अनुष्ठान को करने का अधिकार ब्राह्मणों को प्राप्त नहीं था। हर तत्व दीघीति में उद्धृत कालिका पुराण, तंत्रसार एवं गायत्री तंत्र में एक ब्राह्मण को देवी को अपना रक्त अर्पित करने से मना किया गया है।[1]

संस्कृत साहित्य में भी हमें ऐसे धार्मिक कृत्य का वर्णन प्राप्त होता है। राजा विक्रमादित्य के सम्बन्ध में अनेक कहानियाँ प्रचलित हैं कि वह विकट पीड़ाओं के कारण अपनी गर्दन पर अपने कृपाण से प्रहार करता था। इस प्रकार अनिवार्य सहायता की प्राप्ति के लिए वह देवी को प्रसन्न करता था।[2] राजपुत्र बीरवर के सम्बन्ध में भी एक कहानी है, जिसमें कहा गया है कि अपने राजकीय स्वामी को समुपस्थित दुर्भाग्य से उबारने के लिए वह एक बार देवी चण्डिका को स्वयं को अर्पित करने के लिए तैयार हो गया था।[3]

इस प्रकार हम इन साक्ष्यों से यह निष्कर्ष निकल सकते हैं कि नर बलिदान की प्रथा अधिकांशतः देवी दुर्गा को प्रसन्न करने के लिए प्रचलित थी। उद्देश्य था अपने या दूसरों के लिए उसकी अनुकम्पा प्राप्त करना तथा कुछ परिस्थितियों में यह सर्वश्रेष्ठ बलिदान की भावना से किया जाता था।[5] किन्तु इस प्रकार की प्रथा को कभी भी सामाजिक अनुमति प्राप्त नहीं थी।

---

1. कालिका पुराण – LXVII-50
   सिंहव्याघ्रं नरं चापि स्वगात्र रुधिरन्तथा।
   न दद्याद् ब्राह्मणो मद्यं महादेवी कदाचन।।
   तंत्रसार – पृष्ठ 934
   हरतत्व दिधिति – पृष्ठ 329
2. यू. एन. घोशाल – स्टडीज इन इण्डियन हिस्ट्री एण्ड कल्चर – पृष्ठ 483,484 fn
3. बृहत्कथामंजरी (क्षेमेन्द्र) हितोपदेश III/8, एवं वेताल पञ्चविंशति।

अध्याय 10

स्कन्द पुराण में वर्णित देवियाँ

परिचय : पौराणिक साहित्य में स्कन्द पुराण का महत्वपूर्ण स्थान है। सभी पुराणों में यह बृहदाकार है। शक्तिवाद के दृष्टिकोण से इसका महत्व अत्यधिक है, क्योंकि इसमें भारत में पूजी जाने वाली अनेक देवियों का विस्तार से वर्णन मिलता है। इसमें मातृदेवियों के विभिन्न रूपों का वर्णन मिलता है। इसमें वर्णित देवियाँ न केवल उस काल में भारतवासियों में लोकप्रिय थी, बल्कि वे आज भी उतनी ही लोकप्रिय हैं। केवल यही एक ऐसा पुराण है, जिसमें एक ही स्थान पर कई देवियों की चर्चा प्राप्त होती है तथा विभिन्न कहानियाँ उन देवियों की महत्ता एवं उदारता को प्रतिष्ठापित करने के लिए उनसे गुँथी हुई है।

(1) **ललितादेवी**-यह वैष्णवी शक्ति है तथा इसके उपासक विष्णु है। यह सोमेश क्षेत्र में दैत्यसूदन के पूरब या योगेश्वरी के नजदीक अवस्थित है। इसे विशालाक्षी भी कहा जाता है, जिसका तादात्म्य महामाया या भैरवी शक्ति से है। यहाँ यह कहा जाता है कि देवी के दो अभिव्यक्त रूप थे- ललिता और उमा। उपासक को इन दोनों देवियों का दर्शन करने के लिए वहाँ माघ महीने के शुक्ल पक्ष की तृतीया को जाना चाहिए।[1]

(2) **चर्ममुण्डा**-यह हाटकेश्वर क्षेत्र की देवी है। इस देवी की स्थापना राजा वीरसेन के पुत्र राजा नल के द्वारा की गयी थी। वह हर महानवमी को जंगल में देवी की उपासना फल एवं फूल से किया करता था। कहते हैं-उसे देवी ने दर्शन दिया था।[2]

---

1. स्कन्द पुराण - 7/59/1-12
2. स्कन्द पुराण - 6/54/1-34

(3) **अजादेवी**-इसने राक्षस 'अघ' की सेनाओं का सर्वनाश किया। यह सिंहवाहिनी है। इसके हाथों में कृपाण और चर्म है। वह रणक्षेत्र में राक्षसों का वध करती हुइ आगे बढी और उसके पीछे करोडों की सख्या में सेना थी। तदनन्तर वह प्रभासक्षेत्र में शिव के साथ रहने लगी।[1]

(4) **पृष्ठमाता**- इसका निवास में मणिकर्णिका तीर्थ के नजदीक है। यदि कोई साधक स्नान करने के बाद उसे देख ले तो उसके सारे पाप नष्ट हो जाते है। (वह उसके सारे पापों को नष्ट कर देती है) वह बैल (साँड) या भेड़ की बलि से प्रसन्न होती है। सन्तान प्राप्ति के लिए उपासक को कुम्भ पर्व में स्नान करना चाहिए।[2]

(5) **कंटकशोधि**-इस देवी का निवास देवकुण्ड के उत्तर में तथा भास्कर के दक्षिण मे है। जब दैत्यों ने ऋषियों को काफी तंग करना शुरू किया, तो ऋषियों ने देवी को प्रसन्न किया। कहा जाता है कि चार हाथों वाली यह देवी हवनकुण्ड की अग्नि से प्रकट हुई और उन दानवों का संहार किया। इसकी आराधना सभी माह के अष्टमी और नवमी को किया जाता है।[3] इसकी विशेष अर्चना शरद ऋतु की नवरात्रि को सम्पन्न होती है।

(6) **मंगला देवी**-यह भी प्रभास क्षेत्र की देवी है। यह ब्राह्मी शक्ति है।[4] यह प्रभास क्षेत्र में स्थित है तथा भक्तों की गरीवी दूर करती है। भगवान् शंकर के अज नामक मुख से उत्पन्न हुई थी।

---

1. स्कन्द पुराण - 7/59/1-2
   अजवक्रात् - महादेवि अजानाम महाप्रभा।
   अघासुररणे घोरे मम क्रोधेन भामिनि।। 11।।
   खड्गचर्मधरादेवी सुरूपा सिंहवाहिनी।
   मर्दयन्ती महादैत्यान् देवीकोटि समन्विता।। 12।।
   क्षेत्रं पवित्रं विज्ञाय संस्थिता तव भामिनी।
   सोमेशादीशकोणस्था गौरीशादुत्तरे स्थिता।। 13।।
2. वही - 5/ अवन्ती खण्ड 454/1-34
   सा चैव सर्वलोकानां देवी दुरितहारिणी।
3. स्कन्द पुराण - 7/285/1-22,29,6/100/1-5
4. स्कन्द पुराण - 7/58/1-10

(7) **गौरी**- उसका निवास हिमालय में ईशानि शिखर पर है जहां इसने पुत्र के लिए तप किया था। यहाँ इस देवी के सम्मान में माघ महीने के शुक्ल पक्ष की तृतीया को समारोह आयोजित किया जाता है।

(8) **अजापालेश्वरी**- इसकी संस्थापना अयोध्या में राजा अजयपाल के द्वारा की गयी। यह व्याधियों की प्रमुख देवी है[1]। इसकी उपस्थिति प्रभास क्षेत्र मे भी है। इसकी उपासना अष्टमी और चतुर्दशी को की जाती है।

(9) **हरसिद्धि देवी**- चण्ड और प्रचण्ड नामक असुरों का संहार करने के लिए शिव ने कैलाश (महाकाल) मे इस देवी को अपने अनुकूल बनाया। जो देवी हरसिद्धि को देख लेता है, उसे महान् पुण्य प्राप्त होता है। (उसमें विलक्षण प्रतिभा का उदय होता है) आश्विन माह के नवमी को भैस, बैल, साँड का बलिदान देना श्रेयस्कर माना गया है। प्रसन्न होने पर देवी हर प्रकार की खुशी और आनन्द देती है।[2]

(10) **क्षेमंकरी**-इस देवी की उपासना सौराष्ट्र में आनर्त देश में होती है। एक राजकुमारी ने इसके मन्दिर का निर्माण करवाया। क्षेमंकरी कहलाने का कारण यह है कि वह अपने भक्तों को हर प्रकार की खुशी देती है। इसकी उपासना चैत्रमाह की अष्टमी को होती है[3]

(11) **गोजपा देवियाँ**-धर्मारण्य में इन देवियों की स्थापना आर्य जातियों एवं सभी जीवित प्राणियों की भलाई के लिए किया गया। यदि इसकी संस्थापना अर्चना की जाए तो यह सभी सुख-साधन उपलब्ध कराती है।[4]

(12) **छत्रजा देवी**-धर्मारण्य के पश्चिम में इस देवी की मौजूदगी है। वहाँ एक तालाब भी है। वह ब्राह्मणों के हितों की संरक्षिका है। कहा जाता है कि यदि यहाँ दान,[5] पिण्डदान आदि कर्मकाण्ड अनुष्ठित किए

---

1. स्कन्द पुराण - 7 अर्बुद खण्ड - 52/1-38
2. स्कन्द पुराण - 6/93/1-95, 7/56/1-50
3. स्कन्द पुराण - 5 अवन्ती खण्ड - 20/1-17
4. स्कन्द पुराण - 6/155/1-31
5. स्कन्द पुराण - 3 धर्मारण्य, 16/115/1-15

जाएँ तो अक्षर और अमूल्य फल की प्राप्ति होती है। इस देवी के लिए बलिदान का भी विधान है।[1]

(13) **आनन्दा देवी**- धर्मारण्य क्षेत्र के एक शहर में उसकी प्रतिष्ठापना की गयी थी। वह सात्विकी शक्ति है। कुंवारियों और ब्राह्मणों कों खिलाने से, मंत्र के अनुष्ठान,दान इत्यादि के द्वारा अनन्त फल की प्राप्ति होती है। पिशाच, शाकिनी और डाकिनी तथा शत्रुओं से भय का नाश होता है।[2]

(14) **वृद्धाम्बा देवी**-राजा चमत्कार के द्वारा निर्मित चमत्कारपुर नगर की सुरक्षा के लिए इसकी प्रतिष्ठापना यहाँ भी की गयी। अम्बा और वृद्धा नामक दो राजकुमारियाँ, जिनका विवाह काशीराज के साथ हुआ था, उसकी उपासना करती थी। काशीराज यवनों से हार चुके थे अतः अम्बा और वृद्धा ने यवनों का सर्बनाश करने के लिए देवी को प्रसन्न किया। कहा जाता है कि चार हाथों वाली यह देवी आभायुक्त मुखाकृति के साथ हवनकुण्ड की अग्नि से प्रकट हुई। दूसरी देवी भी अग्नि से, आविर्भूत हुई। असंख्य माताएँ यवनों से लडने के लिए वहाँ आयीं। राजा काशीराज ने देवियों का एक मन्दिर निर्माण कराया,जिसे अम्बा और वृद्धा के नाम से जाना जाता है।[3]

(15) **शारदा**-यह काश्मीर में है।[2]

(16) **शालक्रटंकटा**-इसका निवास सावित्री नदी के दक्षिण एवं रेवती नदी के पूर्व है। यह सभी पापों एवं दुःखो को दूर करने वाली है तथा दानवों का संहार करती है। इसकी संस्थापना रावण और विभीषण के द्वारा की गई थी। उसका शरीर बहुत डरावना है। माघ माह की चतुर्दशी को उसका आह्वान किया जाता है तथा उसकी उपासना पशुबलि के द्वारा

---

1. स्कन्द पुराण - 3 धर्मारण्य, 16/15-20
2. स्कन्द पुराण - 16/20-30
3. स्कन्द पुराण - 3 धर्मारण्यम्, 6/86/1-65
4. स्कन्द पुराण - 6/2/151/8

होती है।[1]

(17) **कण्ठेश्वरी**- इसका निवास द्वारिकापुरी के पास है।[2]

(18) **यक्षेश्वरी**- इसका निवास रैवत पर्वत पर है। यह अपने भक्तों की समस्त आकांक्षाओं को पूर्ण करती है।[3]

(19) **पिंगा देवी**- इसका समीकरण पार्वती के साथ है। इसकी उपासना तृतीया को की जाती है तथा यह धन, स्वास्थ्य और संतान देने वाली है।[4]

(20) **बण्डी देवी**-अयोध्या मे इसकी उपासना जंजीरों या कारागृह से मुक्त होने के लिए की जाती है। मंगलवार को इस तीर्थ स्थान पर जाना पुण्यप्रद कहा गया है। देवी की उपासना की साmग्री है-फल और फूल।[5]

(21) **चुदकिया देवी**-अयोध्या में उसके स्मरणमात्र से सभी योजनाएँ फलीभूत हो जाती है तथा सारे कार्य पूर्ण हो जाते है। वहाँ इस की तीर्थ यात्रा की तिथि चतुर्दशी को विहित है तथा उपासना सामग्री दीपक है।[6]

(22) **चित्रेश्वरी**- आगम शास्त्र में कहा गया है कि इस देवी की साधना, माघ माह की प्रथम चतुर्दशी को करनी चाहिए। साधकों के हाथ में मनुष्य के मांस से भरा हुआ कपाल हो और वे इस देवी को अर्पित करे।[7]

---

1. स्कन्द पुराण - -, 7/164/1-5
   महापापौघशमनीं सर्वदुःखविनाशिनीम्।
   पूजितां सिद्धगन्धर्वैः स्फुरद्दष्ट्रोग्रभीषणाम्।। 2।।
   महाप्रचण्डदैत्यध्नीं पौलस्त्येन प्रतिष्ठिताम्।
   महिषध्नीं महाकायां क्षेत्रे प्राभासिके स्थिताम्।। 3।।
2. स्कन्द पुराण - 7 द्वारका M.17/32
3. स्कन्द पुराण - 7/321/7-12
4. स्कन्द पुराण - 7/237/1-12
5. स्कन्द पुराण - II अयोध्या M-8/ 24-28
6. स्कन्द पुराण - 8/28-32
7. स्कन्द पुराण - P. 6/150/ 17-19

(23) **मरुददेवी**- यह प्रभास क्षेत्र की देवी है। मरूतों ने इन्हें प्रसन्न किया था। अपनी सभी मनोकामनाओं की पूर्ति के लिए इसकी उपासना महानवमी को की जाती है।[1]

(24) **गौरीदेवमाता**-यह भी प्रभास क्षेत्र की देवी है। यह है तो गौरी के रूप में, किन्तु कहलाती है देवमाता। इसका एक रूप बडवानल (जल की अग्नि) का भी है। और यह देवताओं को इस अग्नि से सुरक्षा प्रदान करती है। इसकी पूजा माघ माह की तृतीया को सम्पन्न की जाती है।[2]

(25) **कर्णमोती**-इसका भी निवास प्रभास क्षेत्र है। इस पीठ का आदर देवता गण भी करते है। यह देवी चारों ओर यागिनियों से घिरी हुई है। इसकी अर्चना नवमी को की जाती है।[3]

(26) **चण्डिका**-सोमेश्वर में यह योगिनी चण्डिका कहलाती है।[4]

(27) **कापालिकेश्वरी**- इस देवी का प्रतिष्ठापन कापालिकेश्वर में किया गया है। इसलिए इस नाम से अभिहित की जाती है।[5]

(28) **कुण्डेश्वरी**- यह पुष्कर क्षेत्र या प्रभास क्षेत्र की देवी है तथा यह सभी पापों एवं दीनताओं को दूर करती है। शंरवोदक के नाम से यहाँ एक तालाब (कुण्ड) है। मोक्ष की प्राप्ति के लिए उपासक को इसमें अवश्य स्नान करना चाहिए तथा माघ माह में देवी की उपासना भी करनी चाहिए।[6]

(29) **अपर द्वारका देवी**- यह द्वारका के पूर्वी छोर (द्वार) पर अवस्थित है। इसकी उपासना चैत्रमाह के नवमी को फल और फूल के द्वारा की जाती है। किन्तु विशेष समारोह शरत् कालीन नवरात्र को अनुष्ठित

1. स्कन्द पुराण - 7/284/1-3
2. स्कन्द पुराण - 7/179/1-6
3. स्कन्द पुराण - 7/183/1-3
4. स्कन्द पुराण - 7/142/7.
5. स्कन्द पुराण - 1/234/58-59
6. स्कन्द पुराण - 7/113/1-11

किया जाता है।[1]

(30) **देवी**-इसकी आवास द्वारका क्षेत्र में चन्द्रभागा नदी के तट पर है। वह यशोदा की पुत्री एवं कृष्ण तथा बलराम की बहन है। वह कुंवारी है तथा कंस की संहारिका है। उसके स्मरण मात्र से सभी मनोकामनाएँ पूर्ण होती है।[2]

(31) **विश्वभुजा देवी**- कहा जाता है कि वह वाराणसी में रहती है तथा उसकी मौजूदगी हर समय महसूस की जाती है। सर्वप्रथम उसकी आराधना इन्द्राणी ने की थी। इस देवी के बीस हाथ हैं तथा इसकी उपासना चैत्र और फाल्गुन माह के शुक्लपक्ष के तृतीया को की जाती है। होम के साथ रात्रि में इसकी पूजा की जाती हैं। रात मे उसे भोजन भी परोसा जाता है।[3]

(32) **मंगलागौरी**-यह वाराणसी की देवी है। यह गौरी का ही एक रूप है तथा लोगों में अच्छाई का संचार करती हैं। जो उपासक इसकी उपासना करते है, उन्हें इस जगत् में पुनः आने का कष्ट नहीं करना पड़ता।

---

1. स्कन्द पुराण - I/2/53/26-28
2. स्कन्द पुराण - 7 द्वारका M. 16/8-9
   देवी चन्द्रार्चिता यत्र यशोदा-नन्द-नन्दिनी।
   कुमारिका शक्तिहस्ता खड्गखेटकधारिणी।।
   कंसादिदैत्य दलनीं स्वसारं रामकृष्णयोः।
   यस्याः स्मरण मात्रेण सर्वान् कामानवाप्नुयात्।।
3. स्कन्द पुराण - IV/2/80/1-86
   वाराणस्यां समर्च्या त्वं विश्वे प्रत्यक्षरूपिणी। 76।।
   त एवं विश्वभोक्तारो विश्वमान्यास्त एवहि।
   ये त्वां विश्वभुजामत्र पूजयिष्यन्ति मानवाः।। 6।।
   विश्वे विश्वभुजे विश्वस्थित्युत्पत्ति लयप्रदे।। 7।।
   मनोरथ तृतीयायां यस्ते भक्तिं विधास्यति।। 8।।
   पूज्या विश्वभुजा गौरी भुजविंशतिशालिनी।। 28।।
   सदैव नक्ते पूजोक्ता सदा नक्ते तु भोजनम्।
   नक्त एवहि होमोऽयं नक्त एव क्षमापनम्।। 55।।

इसकी उपासना चैत्र महीने की शुक्ल पक्ष की तृतीया को ही पूर्ण उमंग एवं आनन्दोत्सव के साथ सम्पन्न की जाती है। तदनन्तर कुमारीपूजा, ब्रह्मभोज, हवन आदि सामान्य अनुष्ठान अनुष्ठित किए जाते हैं। इसकी साधना से साधक सकल भोग विलास के साधन, प्रचुर धन, अच्छा स्वास्थ्य, संतान, मनोनुकूल पति या पत्नी, और अन्ततः मोक्ष की प्राप्ति करता है।[1]

(33) **महाकाली** : यह प्रभास क्षेत्र की देवी है। यहाँ काली, का एक पीठ है। यदि एक साल तक प्रत्येक कृष्णपक्षीय अष्टमी को इस देवी की साधना की जाए तो वह शत्रुओं का नाश करती है। दुःख-दर्द एवं दरिद्रता को दूर करती है। घर की समृद्धि के लिए शुक्लपक्षीय तृतीया को इसे मनाना एवं अर्चना करनी चाहिए है।[2]

(34) **चण्डिका** : नागहृदा ने इसकी प्रतिष्ठापना अर्बुद पर्वत पर की थी।[3] राजा जन्मेजय के द्वारा दिए जाने वाले बलिदान से स्वयं को मुक्त करने के लिए नागों ने इसकी उपासना की थी। श्रावण मास के कृष्णपक्षीय पंचमी (जिसे नागपंचमी दिवस के रूप में मनाया जाना जाता है) को नागा लोग इसकी उपासना एवं अनुष्ठान करते हैं।

(35) **अम्बा रेवती** : यह देवी नागाओं की कुल देवी है। रेवती नामक एक स्त्री इसकी अर्चना किया करती थी। इसका निवास नागलोक में है। नागों के द्वारा देवी की उपासना सामान्यतया अष्टमी, नवमी और चतुर्दशी को तथा विशेष रूप से आश्विन माह में शुक्ल पक्ष में की जाती है। वह सभी तरह के भय एवं पापों को दूर भगाती है एवं इस तरह यह अम्बा रेवती कहलाती है। बच्चों के लिए भी वह काफी सहायक हैं।[4]

---

1. स्कन्द पुराण - IV/1/49/55-91
2. स्कन्द पुराण - 7/130/1-12
3. स्कन्द पुराण - 7/37/1-29
4. स्कन्द पुराण - 6/113/1-61
   ततः प्रभृति सा देवी तस्मिन्क्षेत्रे व्यवस्थिता।
   तन्नाम्ना कामदान्नदा सर्वव्यसननाशिनी।। 57।।

(36) **चमत्कारी दुर्गा :** अपने नगर की रक्षा के लिए राजा चमत्कार ने इस देवी को प्रतिष्ठापित किया था। इसकी प्रदक्षिणा करना भी बहुत पुण्यप्रद कहा गया है। अपने हितों की रक्षा के लिए ब्राह्मण, योगीगण एवं राजा इस देवी की पूजा करते हैं।[1]

(37) **शाकम्भरी :** शाकम्भरी नामक एक स्त्री ने इस देवी की पूजा करने के लिए सरस्वती नदी के तट पर इसको संस्थापित किया। उस स्त्री के नाम से ही इस देवी का नामकरण हुआ। इसकी उपासना आश्विन माह में शुक्लपक्षीय नवमी और चतुर्दशी को अनुष्ठित की जाती है। यह अपने भक्तों की सभी मनोकामनाओं को पूर्ण करती है।[2]

(38) **सप्तविंशिका देवी :** सर्वप्रथम इसकी साधना चन्द्र की सत्ता इस पत्नियों ने की। उद्देश्य था–अपने पति का प्यार फिर से हासिल करना। कहते हैं–अपने पति और पुत्र से अत्यधिक प्रेम प्राप्त करने के लिए स्त्रियाँ इस देवी की आराधना किया करती हैं। एक साल तक हर महानवमी को इसकी उपासना की जाती है।[3]

अम्बा सा कीर्त्यते दुर्गा रेवती सोरगप्रिया।
तत संकीर्त्यते लोकै भूतले चाम्बारेवती।। 58।।
न स संवत्सरं यावद्व्यसनं स्वकुलोद्भवम्।
तस्याग्रे निहितं बालं युक्तं दोषैर्विमुच्यते।।
देवी कामप्रदा पुंसां बालकानां सुखप्रदा।। 60।।

1. स्कन्द पुराण - 6/64/1-35
2. स्कन्द पुराण - 6/157/34-42.
3. स्कन्द पुराण - 6/84/16-40,

सापि देवी ततः प्रोक्ता सप्तविंशतिका क्षितौ।
सर्वसौभाग्यदा स्त्रीनां तस्मिन्क्षेत्रे व्यवस्थिता।। 9।।
अहन्धारेति विख्याता प्रासादेऽत्र त्वया कृते।
कैलासशिखरोपमे रम्ये नानारत्नविचित्रिते।। 30।।
सर्वेषां नागराणां च भावजा देवताः स्मृता।
सा सार्धाष्ट द्विपंचाशत् गोत्राणां कुलदेवता।। 31।।

(39) **धारा देवी :** शंखेश्वर पीठ में धारा नाम की एक योगिनी ने देवी के मन्दिर का निर्माण करवाया। तब से देवी धारा के नाम से जानी जाती हैं। इसकी अर्चना चैत्र माह में शुक्लपक्षीय अष्टमी को की जाती है। यह नागरों की कुल देवी है।[1]

(40) **कुमारी देवी :** प्रभास क्षेत्र में देवी कुमारी के नाम से अभिहित की जाती है। इसका उद्‌भव देवताओं से हुआ। इसने रूरू नामक एक असुर के साथ युद्ध किया। इसके पीछे-पीछे कुमारियों की एक सेना थी। अन्ततः इसने राक्षस का वध किया और उसका सिर अपने हाथ में ले लिया (चर्ममुण्डधरा)। इस देवी का समीकरण चामुण्डा, कालरात्रि, काली आदि देवियों के साथ है। उसकी उपासना बलिदान के साथ की जाती है। उसका रूप उग्र रूपों में से एक है। उसकी हँसी से कई लड़कियों का जन्म हुआ है।[3]

(41) **काशी की दुर्गा :** दुर्ग नामक राक्षस का संहार किया। विन्ध्यवासिनी एवं महामाया से इस का समीकरण है।

(42) **भवानी :** वाराणसी में यह शिव की पत्नी के रूप में जानी जाती है और यह स्थान भवानी तीर्थ के नाम से मशहूर है। भवानी का कार-समारोह (Car-festival) चैत्र माह के अष्टमी को सम्पन्न होता है। यह हितकारिणी है और अपने भक्त की सारी मनोकामनाएँ पूर्ण कर होती है। काशीवासियों के योग-क्षेम की जिम्मेवारी उसी पर है। वह शाकाहारी

---

1. स्कन्द पुराण - 6/162/1-35
   स्कन्द पुराण - 6/161/40-55
   स्कन्द पुराण - 6/163/7-13
2. स्कन्द पुराण - IV, 2/71/1-119
3. स्कन्द पुराण - 7/233/1-33.
   तत्रकन्या समुत्पन्ना दिव्या कमललोचना।
   व्यापयन्ती दिशा सर्वा श्रुत्वा तस्यास्तदा गिरः।। 98।।
   ध्यान 20-34, उग्ररूपों के विभिन्न नाम-
   कन्यासैन्येन संयुक्ता बहुरूपेण भास्वती।। 19
   तस्य त्वं वरदा देवि भवसर्वमता सती।। 28।।

देवी है।[1]

(43) **बालातिहलघ्नी देवी :** यह प्रभासक्षेत्र की देवी है। देवताओं के द्वारा पूजित इस देवी ने महिषासुर के पौत्र बल और अतिबल नामक दो दैत्यों का संहार किया। सिंहवाहिनी इस देवी के बीसों हाथ हथियारों से लैस हैं। प्रेतों से घिरी हुई देवी चमकती रहती है। इसकी साधना अष्टमी, नवमी चतुर्थी और महानवमी को पशुबलि के साथ की जाती है। इस देवी के सम्मान में एक समारोह का आयोजन किया जाता है।[2]

(44) **योगेश्वरी :** इसका भी निवास प्रभासक्षेत्र है। इसने महिषासुर का संहार किया और देवताओं ने इसकी स्तुति की। इसका समीकरण सिंहवाहिनी एवं दुर्गा के साथ है। आश्विन माह के नवरात्र को इसकी उपासना हवन, बलि, अनुष्ठान अर्चना आदि के साथ की जाती है।[3]

(45) **भूतमाता :** प्रभास क्षेत्र में समुद्र के उत्तर की और एक देवी भूतमाता कहलाती है, जो भूतों की माँ है। बच्चों की देवी के रूप मे जानी जाती है। काला-चेहरा और खोपडियों की माला पहने हुए यह देवी का एक उग्र रूप है। सम्पूर्ण देश में विभिन्न नामों से इस देवी की पूजा की जाती है। नवरात्र को यदि पूरी तैयारी के साथ उसकी उपासना की जाए तो वह भय, पीड़ा, व्याधि आदि को दूर भगाती है। देवी के लिए प्रज्जवलित दीये का दान करना विशेष अनुष्ठान है।[4] वैशाख माह में शुक्ल पक्ष मे

1. स्कन्द पुराण - IV/2/6/123-138
   गृहमेध्यत्र विश्वेशो भवानी तत्कुटुम्बिनी।
   सर्वेभ्यः काशीसंस्थेभ्यो मोक्षशिक्षां प्रयच्छति।। 32।।
   योगक्षेमं सदाकुर्याद्भवानी काशिवासीनाम्।। 30।।
   चैत्राष्टम्यां महायात्राम्भवान्याः कारयेत्सुधीः।
   अष्टाधिका प्रकर्त्तव्याः शतकृष्णाः प्रदक्षिणा ।। 123।।
   भक्तानां कामदा नित्यं भवानी पूजिता नृभिः।।
2. स्कन्द पुराण - 7/116/1-69
3. स्कन्द पुराण - 7/8/1-69
4. स्कन्द पुराण - 7/163/1-127
   जनकोटि गणैर्युक्तां भूतप्रेतसमाकुलाम्।

प्रथम दिवस से लेकर पूर्णिमा तक उसकी साधना की जाती है। प्रत्येक वर्ष इसकी साधना एवं उत्सव की जानी चाहिए।[1]

(46) **वत्सेस्वरी**- सम्राट वत्सराज ने एक नगर का निर्माण किया और उस नगर की रक्षा के लिए देवी को स्थापित किया। देवी ने राजा को अल्लालया या अहालय नामक दानवी का संहार करने मे सहायता पहुचायी। धर्मारण्य क्षेत्र मे अहालया ग्राम मे उस देवी का अधिष्ठापन किया गया। इसकी उपासना महाष्टमी को की जाती है।[2]

(47) **गयवाडा देवी**-यह गयवाडा नामक गाँव में संस्थापित है। उसने गय नामक राक्षस को (नपुंसक) कमजोर बनाकर मार डाला (कहा जाता है कि देवी के द्वारा नपुंसक बना दिए जाने के बाद पुरूष की शक्ति प्रभावहीन हो जाती है। माघ माह में अष्टमी को उसकी उपासना की जाती है।[3]

(48) **गौरीपञ्चपिण्डिका**- हाटकेश्वर क्षेत्र में लक्ष्मी[4] और पार्वती ने खुद इस देवी को प्रतिष्ठापित किया। कहा जाता है कि देवी पञ्चमहाभूतों से मिलकर बनी है। सौभाग्य एवं पति का प्यार प्राप्त करने के लिए इसकी

---

1. स्कन्दपुराण।
   कृष्णाकरालवदन-पिंगावती मुक्तमूर्धजा।।
   कपालमालाभरणा बद्धमुण्डाऽर्धपिण्डिका।। 15।।
   सर्वत्रैषा भगवती बालानां हितकारिणी।। 75
   प्रतिप्रत्प्रमृति वैशाखे यावत्पंचदशी तिथिः।
   दीपः सर्वार्थ साधकः।। 103।।
   प्रमासे तत्संस्थिता देवी समुद्रादुत्तरेण तु।। 124।।
2. स्कन्द पुराण - 1/2/65
3. स्कन्द पुराण - I/2/65/107-113
   गायवाडे कयवाडां येऽर्चयिष्यन्ति मानवाः।
   माघाष्टम्यां न शिष्यन्ति तस्य सर्वेप्युपद्रवाः।। 118।।
   ये च मां कोपयिष्यन्ति पाण्डवाराधितां सदा।
   तेषां पुंस्त्वं हरिष्यामि महारौद्राधितिष्ठति।। 119
4. स्कन्द पुराण - 6/167/1-65

आराधना पूरे उत्साह के साथ करनी होती है। स्त्रियों के द्वारा इसकी पूजा मार्गशीर्ष, ज्येष्ठ, श्रावण एवं भाद्रपद महीने में तृतीया को की जाती है।[3]

इस प्रकार अनेक भक्तों के द्वारा संस्थपित विभिन्न देवियों के बारे में स्कन्दपुराण हमें महत्त्वपूर्ण जानकारी उपलब्ध कराता है। ये देवियाँ अपने साधकों के लिए बड़ी कारगर सिद्ध होती है। इस लेख में तो भक्त की सारी मनोकामनाएँ पूर्ण करती है और अन्ततोगत्वा उन्हें मोक्ष भी प्रदान करती है।

---

1. स्कन्द पुराण - 6/127/1-67, 6/138/ 1-51. 6/167/ 1-65, 6/168/ 1-77
   पंचपिण्डात्मकां गौरी कृत्वा कर्दमसम्भवम्।। 1।।
   नभः पृथिवी क्षान्तीशि नम आपोभ्यो शुभे।
   तेजस्विनि नमस्तुभ्यं नमस्ते वायुरूपिणि।
   आकाशरूपसम्पन्ने पंचरूपे नमो नमः।। 62।।

अध्याय 11

श्रीकण्ठ के मत में शक्ति

हम लोग काफी सौभाग्यशाली हैं कि हमारे देश की परम्परा दर्शन, धर्म और नीतिशास्त्र का विशाल भण्डार संजोए हुई हैं। यह सम्पूर्ण नवनीत ध्यान के द्वारा अर्जित किया गया है। तदनन्तर भारतीय द्रष्टाओं ने इसका प्रतिपादन किया है। यदि इसे संसार में अनूठा एवं अप्रतिम कहा जाता है तो कोई अतिशयोक्ति नहीं है। भारती१ दर्शन की विभिन्न ईश्वरवादी शाखाओं में वेदान्त सम्प्रदाय अत्यन्त महत्वपूर्ण एवं सुविख्यात हैं इसमें भारत की दार्शनिक अन्तर्दृष्टि, धार्मिक भक्ति एवं नैतिक प्रयास चरम बिन्दु तक प्रतिध्वनित हुआ है। वेदान्त शाखा के दस सम्प्रदाय है। इन सबका प्रचार प्रसार विभिन्न आचार्यों ने वेदान्त की प्रतिष्ठित विशेषताओं पर बल देते हुए किया है। ये निम्नांकित है–

1. शंकर का अद्वैत वेदान्त : यह सर्वप्रथम विकसित हुआ तथा सभी आयामों में परिपूर्ण होने के कारण इसे केवलाद्वैतवाद कहा जाता है (शुद्ध एकेश्वरवाद)
2. रामानुज का विशिष्टाद्वैतवाद
3. निम्बार्क का स्वाभाविक द्वैताद्वैतवाद
4. माधव का भेदाभेदवाद
5. वल्लभ का शुद्धाद्वैतवाद
6. श्रीकण्ठ का विशिष्ट शिवाद्वैतवाद
7. भास्कर का औपाधिक भेदाभेदवाद
8. विष्णु स्वामी का शुद्धाद्वैतवाद

9. श्रीपति का विशेषाद्वैतवाद

10. बलदेव का अचिन्त्य भेदाभेदवाद

इन दसों शाखाओं में शंकर एवं भास्कर किसी विशेष शाखा के नहीं कहे जाते। उन्होंने ब्रह्म को कभी भी किसी विशेष देवता के रूप में निरूपित नहीं किया है, जबकि अन्य आचार्य व्यापक अर्थों में साम्प्रदायिक वेदान्ती कहे जा सकते हैं।

इन सबों में श्रीकण्ठ और श्रीपति शैव है जबकि शेष आचार्य वैष्णव मतावलम्बी हैं। श्रीकण्ठ के देश-काल एवं जीवनी के बारे में कुछ भी जानकारी उपलब्ध नहीं है। हम केवल यही कह सकते हैं कि उनका जन्म शंकर के बाद और अप्पय दीक्षित से पहले हुआ। अप्पयदीक्षित का कहना है कि श्रीकण्ठ का आविर्भाव रामानुज ओर शंकर के बाद किन्तु अन्य शाखाओं (वेदान्त) के पहले हुआ। जोभी हो, भारतीय दर्शन में, विशेषकर वेदान्त चिन्तन में श्रीकण्ठ का योगदान अद्भुत एवं अप्रतिम है।

शैव वेदान्तियों में श्रीकण्ठ सर्वाधिक प्रख्यात लेखक हैं।[1] उनका ब्रह्मसूत्रभाष्य, जो श्रीकण्ठभाष्य के नाम से मशहूर है, शैवों का सर्वाधिक प्रामाणिक वेदान्त-भाष्य माना जाता है। शैव दर्शन के दृष्टिकोण से उन्होंने वेदान्त सिद्धान्त की सम्यक् व्याख्या की है। शिव सर्वोच्च सत् है। उनके अनुसार शिव हमेशा शक्ति के साथ जो कि खुद उनकी शक्ति है (उनमें छिपी शक्ति है) समवेत हैं। ब्रह्म या शिव 'अनन्त-अचिन्त्य शक्ति' कहलाता है। जो अनन्त रहस्यमयी शक्ति का स्वामी हैं। वह कुछ भी कर सकने में समर्थ है। वह उर्जा का सर्वशाश्वत भण्डार है। यह वही उर्जा है जो उसके व्यक्तित्व में जीवन का संचरण एवं उसे सजीव कर रहा है। यह ऊर्जा

---

1. शक्तिविशिष्टत्वं स्वाभविकमेव ब्रह्मण: (1.1.2)

ज्ञानानन्दादिशक्ति महिमातिशयवत्वं हि ब्रह्मत्वम्। 1.1.1 (पृ. 89)

चिदचिदपंचाकारपरमशक्तिविशिष्ठ। द्वितीय वैभवस्य परमब्रह्मण: 1.1.1 (पृ. 71)

सर्वज्ञत्वं अलुप्तशक्तिमत्त्वं अनन्तशक्तिमत्त्वं च। 1.1.2 (पृ. 21)

उसके प्रत्येक गुण और प्रत्येक शक्ति में कार्य कर रहा है। यही शक्ति एवं यह उर्जा शाश्वत है और उसे कभी-कभी माया, शक्ति, प्रकृति इत्यादि भी कहा जाता है।[1] सिद्ध-सर्व-शक्ति संपदा विलासे परमेश्वरे। 2.1.31

1. परा प्रकृति या पराशक्ति

श्रीकण्ठ के अनुसार यह सर्वोच्च शक्ति या पराशक्ति, पराप्रकृति कहलाती है। किन्तु भौतिक जगत् के लिए जिम्मेवार ब्रह्म भौतिक शक्ति नहीं है। पराप्रकृति शब्द का प्रयोग इस शक्ति को भौतिक प्रकृति से पृथक् दिखाने के लिए किया जाता है।[1] यह पराप्रकृति आत्मा एवं पदार्थ के जगत् से ऊपर है। सर्वोच्च ज्ञान एवं आनन्द के रूप में इसकी महाविभूति देश, काल एवं अन्य सीमाओं से ऊपर है। वास्तव में यह पराप्रकृति सर्वोच्च ब्रह्म के साथ-साथ उसकी विशेषता स्वरूप एवं गुण हैं। इस प्रकार पराशक्ति के बिना परब्रह्म पूर्णतया शक्तिहीन है।[2] (c.f. शिवः शक्त्या युक्तो यदि भवति शक्तः प्रभवितुं)।[3] शक्ति के बिना शिव शव या शक्तिविहीन है। शक्ति की ऐसी गौरवपूर्ण अवधारणा हैं—श्रीकण्ठ के वेदान्त में।

उनके अनुसार पराप्रकृति, परब्रह्म या शिव के साथ समीकृत है जो उसके (शिव) अस्तित्व को सम्भव एवं प्रभावी बनाती है। सभी दिव्य गुण नाम एवं रूप पराप्रकृति पर ही निर्भर हैं। पराप्रकृति के बिना ये सारी विशेषताएँ परब्रह्म के बारे में सोची भी नहीं जा सकती।[4]

---

1. डॉ. आर. चौधरी - डॉक्ट्रीन ऑफ श्रीकण्ठ - पृष्ठ 44
2. श्रीकण्ठ भाष्य - 1.2.1
   सकलचिदचित्-प्रपंच-महाविभूतिरूपा, महासंविदानन्दसत्ता, देशकालादि-परिच्छेद शून्या, स्वाभाविकी, परमशक्तिः परब्रह्मणः शिवस्य स्वरूपं च गुणश्च भवति।
3. शिवमहिम्नः स्तोत्रः।
4. श्रीकण्ठ भाष्य - 1.2.1
   तद्व्यतिरेकेण परब्रह्मणः सर्वज्ञत्व-सर्वशक्तित्व सर्वकारणत्व-सर्वनियन्तृत्व-सर्वपुरुषार्थ हेतुत्वादिकं सर्वगतत्वं च न संभवति।

2. चित्शक्ति या चिदम्बरम्

शक्ति की उत्कृष्ट अवधारणा का प्रतिपादन करते हुए श्रीकण्ठ अपने पंथगत (शैव) झुकाव के अनुकूल शक्ति का समीकरण चिदम्बरत्व के साथ समायोजित करते हैं। चिदम्बरत्व की अवधारणा श्रीकण्ठ के चिन्तन की केन्द्रीय अवधारणा है।[1] अपने 'शिवार्क-मणिदीपिका में अप्पयदीक्षित 'चिदम्बरम्' की व्याख्या सर्वोच्च सत्ता की 'चित्शक्ति' के रूप में करते हैं। 'सकलप्रपञ्चपरिणामिनी परमेश्वरस्य चिच्छक्तिश्चिदम्बरमुच्यते।' यह न केवल सृजन का उपकरण है, प्रत्युत् सृजन का उपादान भी है। यह जीवों के रूप में आविर्भूत केवल चित् नहीं है और न ही यह भौतिक पदार्थों के रूप में अचित् है। बल्कि यह दोनों का समुच्चय है जो कि ब्रह्म के विशेष स्वभाव को संस्थापित करता है। इस चित शक्ति को आनन्द भी कहा गया है। यह अस्तित्व है और चित्सार है, ठीक ऐसे ही ब्रह्म (सच्चिदानन्दमयम्)[2] कहलाता है।

3. उमा :

श्रीकण्ठ के मत में शक्ति की अवधारणा का उत्कर्ष (समापन एवं निष्पादन, पूर्णता) परब्रह्म शिव की पराशक्ति के रूप में उमा की सर्वोच्च अवधारणा में हैं। वह परमब्रह्म का सच्चासार है तथा उसके साथ एकीकृत है। उसके (पराशक्ति) बिना, वह (परमब्रह्म शिव) पूर्णतया शक्तिविहीन है। दोनों के परस्पर सहयोग के कारण ही सृष्टि सम्भव है।[3] इसलिए जब हम ब्रह्म की परिकल्पना करते हैं, तो हमें अनिवार्यरूप से उसके साथ उमा की भी परिकल्पना करनी पड़ती है।

---

1. श्रीकण्ठ भाष्य - 1.1.2
   परप्रकृतिरूपा परमशक्तिर्हि चिदम्बरमुच्यते।
   प्राणारामं प्राणास्सकलाधारभूता चिदम्बरप्रकृतिरुच्यते।
2. वही - 1.1.16
   ततो ब्रह्मधर्मस्वभावः प्रकृत्यात्मा परमाकाशरूपा परमशक्ति आनन्दमय इत्युच्यते।
3. वही - 1.1.25 वही - 1.3.22
   (उमापतेः परब्रह्मणः) परशक्त्युमासनाथं परं ब्रह्म।

ब्रह्म अपरिवर्तनशील, सर्वोच्च तथा सर्वश्रेष्ठ कहलाता है। किन्तु ये सभी विशेषताएँ उमा, जो कि उसकी शक्ति है, की वजह से हैं।[1] उमा के कारण ही ब्रह्म का यह रंग-विरंगापन (चितकबरापन) हैं। यहाँ शैवों का अद्वैतवादियों से मतभेद है। मतभेद यह है कि ब्रह्म निर्विशेष है या सभी भिन्नताओं से रहित हैं। शैवों का विश्वास है कि उसमें (ब्रह्म में स्वगत भेद है। शिव की शक्ति उमा उसके रूप को प्रकार, रंग, सोन्दर्य, महिमा एवं वैभव (श्रेष्ठता, प्रताप) प्रदान करती है।

वह उसकी सत्ता का आभ्यन्तर (हृदय) है, उसके स्वभाव का सार है। बल्कि यूं कहें कि वही (शिव) है।[2]

शिव शक्ति की ऐसी अद्भुत अवधारणा है शैव दर्शन में। शक्ति का तादात्म्य शिव के साथ है, तथापि वह उससे भिन्न भी है। वह शिव का अंश है, फिर भी उसे (शिव की) अनिवार्यता है। उसकी (शिव की) शक्ति के रूप में शक्ति पूर्णतया शिव पर आश्रित है। किन्तु शिव शक्ति पर अपेक्षाकृत उससे भी अधिक आश्रित है। आश्रय की सीमा यहाँ तक है कि-वह (शिव) क्या है? तथा वह क्या करता है?[3] इसका उत्तर शक्ति के बिना सम्भव नहीं। इस प्रतीयमान विशेषभासी अवधारणा का निराकरण श्रीकण्ठ ने प्रेम की अवधारणा प्रस्तुत करके किया है। इस प्रकार यद्यपि

---

1. वही 4.3.14
   परमशक्त्योमया शवलित रूपं परं
   ब्रह्म सर्वोत्तरमिति निरूपितम्।
   सर्वशक्तिः परमेश्वरः।। 1/2/1.23
2. श्री कण्ठभाष्य - 2.1.18
   शक्तिगर्भितो हि शिवः केवलो भवति। पुनः स्वात्मिकां शक्तिं तादृशीं नामरूपविभागात् चिदचिद्रुपां बहिंर्विस्तारयति। शक्तिमतः शिवस्य संकोचावस्थाप्रलयः। विकासावस्था सृष्टिरिति।
   डॉक्ट्रीन ऑफ श्रीकण्ठ - पृ 49 वही 2.1.22 शक्तिव्यतिरेकेन न कदाचिदपि ब्रह्म विज्ञायते।
3. वही 1.1.1.
   परमशक्तिविशिष्टाद्वितीया वैभवस्य।

उमा ईश्वर का ही स्वरूप है एवं उसे (शिव को) प्रेम पूर्ण बनाती है, किन्तु उसे (उमा को) शिव से भिन्न (ग्रहण) माना गया है। वह उसे प्रेमिल बनाती है। तदनन्तर अन्यगुण एवं कार्य सम्भव होते हैं। ईश्वर अपनी ही शक्ति को प्रेम करता है, जो द्वैत के रूप में भासता है (इस प्रकार ईश्वर (शिव) का प्रेमपूर्ण स्वभाव अपने पूर्णतम सत्ता में अपने प्रेम का पूणतम उत्कर्ष प्राप्त करता है। यह अपनी सत्ता (आत्म व्यक्तित्व) ही उमा है–शिव की पराप्रकृति।[1] यहाँ लेखक (श्रीकण्ठ) माया की अवधारणा, जो कि उसकी (शिव की) शक्ति है, का औचित्य प्रस्तुत (सिद्ध) करता है।[2]

इस प्रकार उमा शिव का स्वरूप है तथा उसके (शिव के) साथ उसका तादात्म्य है। वह उसके (शिव के) साथ एकीकृत है, तथापि वह उसे पूर्ण बनाती है। वह उस पर आश्रित है। फिर भी उसे सम्भव बनाती है। ये सारी विरोधाभासी विशेषताएँ उसे माया के रूप में विभाषित करती हैं, जो कि एक अद्भुत एवं मोहक शक्ति है। यह एक ईश्वर की अवधारणा द्वैत की प्रतीति होती है, किन्तु सारूप में एक ही सत्ता है, शैव चिन्तकों की महत्त्वपूर्ण विशेषता है। शिव और शक्ति के बीच लीला या सर्वोच्च अलौकिक (दिव्य) क्रीडन का सम्बन्ध है। अमूर्त निरपेक्ष सृजन नहीं कर सकता, अपने को अभिव्यक्त नहीं कर सकता। केवल एक मूर्त (साकार) ईश्वर ही वैसा कर सकता है ओर शक्ति इस साकारता (मूर्त्तता) को सर्जक ईश्वर में संप्रेषित करती है। वह प्रेम और प्रार्थना (भक्ति) के ईश्वर में

---

1. वही - 4.4.15. 4.4.19
   शुद्धशक्तिरूपं शिवपदमुच्यते।
   अहमिति शक्ति शिवाद्वयं ब्रह्मोच्यते।
2. वही - 1.1.2
   मायायाः प्रकृतित्वमीश्वरात्मिकाया।
3. श्रीकण्ठ भाष्य - 1.1.16
   शक्त्यात्मनः भेदादर्शनादानन्दमयं ब्रह्म।

जीवन, सौन्दर्य एवं आनन्द का संचार करती है।[1] एकेश्वरवादी सम्प्रदायों के लिए यद्यपि वह माया है। शैवों के लिए वह उमा है।[2] या वैष्णवों के लिए राधा है, किन्तु वह सर्वाधिक सुन्दर (लावण्यमयी) आनन्दमयी एवं ईश्वर की सर्वाधिक मोहक पहलू है।[3] शक्ति की यह अवधारणा दार्शनिक एवं धार्मिक दोनों दृष्टिकोण से अनिवार्य है।[4]

शिव और शक्ति की इस अवधारणा में कुछ भी विरोधाभास नहीं है। तत्वमीमांसीय दृष्टिकोण से एक निरपेक्ष अमूर्त न तो सृजनकर सकता है और न ही अपने को अभिव्यक्त कर सकता है। यह केवल शक्ति है जो सर्जक ईश्वर को साकारता प्रदान करती है। धर्मशास्त्रीय दृष्टिकोण से भी शक्ति ही प्रेम और प्रार्थना के ईश्वर को जीवन, सौन्दर्य एवं आनन्द प्रदान करती है। सभी एकेश्वरवादी सम्प्रदायों के लिए शक्ति की अवधारणा अत्यन्त अनिवार्य है। वेदान्तियों के लिए यही शक्ति माया है जो, ईश्वर का अत्यन्त रहस्यमय एवं विस्मयपूर्ण पहलू है। शैवों के लिए यह शक्ति उमा है वैष्णवों के लिए यह राधा है। वह ईश्वर का सर्वाधिक सुन्दर, सर्वाधिक आनन्दमय एवं सर्वाधिक मोहक पहलू है।[5]

---

1. वही - 4.4.21
   यद्य स्वाभाविक्या हृदयाभूत या परमसत्तास्फुरद्रूपया।
2. वही - 1.9.10, 1.3.40
   परमेश्वरकारूणिकेयमजा प्रकृतिरूच्यते।
   सकलजगदभयप्रदानमधुरस्य प्रेमकारूणिकस्य।
3. वही 1.3.21
   परशक्त्युमासनाथं परं ब्रह्म।
4. वही - 1.4.25
   स्वव्यतिरिक्त प्रकृतौ विश्वाकारत्वं प्रकृतिरूपेण सम्भवति।
5. वही - 3.3.39
   अद्वितीया पुराणी नित्यसिद्धा महास्फुरणरूपा परमा प्रज्ञा ज्ञानशक्तिः।
   उमासहितं परं ब्रह्म सर्वात्मकं मुक्तिसाधकम्।।

दूसरे शब्दों में माया के साथ क्रीड़ा करते हुए, अपने उर्जा के साथ स्पन्दमान् या अपने प्रेम पात्र (पति, पत्नी) के साथ केलि करते हुए शिव ही शक्ति है। दार्शनिक और धार्मिक-दोनों ही दृष्टिकोण से शक्ति की अवधारणा अपरिहार्य है। श्रीकण्ठ के दर्शन में शिव-शक्ति की इस सर्वोच्च एवं उत्कृष्ट अवधारणा को महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है।[1]

1. रमा चौधुरी - डॉक्ट्रीन ऑफ श्रीक़ण्ठ - पृष्ठ 53

अध्याय 12

देवी कौशिकी का जन्मवृत्तान्त

भगवान् विष्णु ने कृष्णावतार में अपनी सहायता के लिए योगनिद्रा को जगत् में जाने के लिए कहा। उन्होंने उसे मथुरा के दैत्यराज (दानवराज) कंस की योजनाओं की समाप्त करने के लिए कहा–

'प्रसादं ते करिष्यामि मत्प्रसादसमं भुवि।
येन सर्वस्य लोकस्य देवि देवी भविष्यति॥ 29

नन्द की रानी यशोदा के गर्भ से उसका जन्म हुआ, जबकि कृष्ण की जननी देवकी थी। कंस और उसके अनुचरों की निगाहों से दूर उन दोनों शिशुओं को रात्रि के निशीथ अन्धकार में परस्पर बदल दिया गया। जब कंस को पता चला कि देवकी ने एक लड़की को जन्म दिया है तब वह देवकी के पास गया। लड़की को न मारने की देवकी के लाखों अनुरोध के बावजूद कंस ने उसकी गोद से लड़की को छीन लिया एवं इस विचार के साथ, कि वह टुकड़े-टुकड़े होकर दम तोड़ देगी, उसे एक शिला पर फेंका। किन्तु वह भौचक्का रह गया, जब उसने देखा कि लड़की आकाश में उड़ गई है एवं वह शीघ्र ही जवान होकर एक देवी के रूप में परिवर्तित हो गई है। देवताओं ने उसकी प्रशंसा की और पूजा अर्चना भी करी। उसने (देवी ने) कंस पर अट्टहास किय। एवं कंस को उसकी मृत्यु के बारे में बताया। उसने उसे यह अभिशाप दिया कि जैसे तुमने मुझे मारने के लिए पत्थर पर फेंका, बहुत जल्द ठीक उसी तरह तुम्हारे दुश्मनों के द्वारा तुम्हारी भी मृत्यु होगी। तदनन्तर वह अदृश्य हो गई और तब से उसका निवास स्थान विन्ध्यक्षेत्र हो गया। उसका वर्णन निम्न प्रकार से मिलता हैं–

---

1. हरिवंश - 47/39-45

A. मच्छवी सदृशी कृष्णा संकर्षण समानना।
विभ्रती विपुला-बाहू-मम बाहूपमा भुवि।। ३९
त्रिशिखं शूलमुद्यम्य खड्गं च कनकत्सरुम्।
पात्रीं च पूर्णां मधुनः पंकजंच सुनिर्मलम्।। ४०
वसाना मेचकं क्षौमं पीतेनोत्तरवाससा।
शशि-रष्मि प्रकाशेन हारेणोरसि राजता।। ४१
दिव्यकुण्डलपूर्णाभ्यां श्रवणाभ्यां विभूषिता।
चन्द्रसापत्न्यभूतेन त्वं मुखेन विराजिता।। ४२
मुकुटेन त्रिचक्रेण केशबन्धेन शोभिता।
भुजगा भोगनिर्घोषै बाहुभिः परिघोपमैः।। ४३
ध्वजेन शिखिबर्हाणामुच्छ्रितेन समीपतः।
अंगजेन मयूराणामंगदेन च भास्वता।। ४४
कीर्णांभूतगणैं घोरैः मन्निदेशानुवर्तिनी।
कौमारं व्रतमास्थाय त्रिदिवं त्वं गमिष्यसि।। ४५

B. जगामाकाशमाविश्य दिव्य स्रगनुलेपना।
कन्यैव चाभवन्नित्यं दिव्या देवैरभिष्टुता।। २९
नीलपीताम्बरधरा गजकुम्भोपमस्तनी।
रथविस्तीर्णजघना चन्द्रवक्त्रा चतुर्भुजा।। ३०
विद्युद्विस्पष्ट-वर्णाभा बालार्कसदृशेक्षणा।
पयोधरस्वनेवती सध्येव सपयोधरा।। ३१
सा वै निशि तमोग्रस्ते बभौ भूतगणाकुले।
नृत्यती हसती चैव विपरीतेन भास्वती।। ३२

इन्द्र ने उसे अपनी बहन स्वीकार किया तथा उसे एक देवी के रूप में प्रतिष्ठित किया। कौशिकों के परिवार में जन्म लेने के कारण वह कौशिकी कहलाती है। उसने शुम्भ और निशुम्भ नामक राक्षसों को मारा। भूतगण

1. हरिवंश - अध्याय 47/29-32

सर्वदा उनका अनुगमन करते हैं। उसकी उपासना बलि एवं मांस के द्वारा नवमी को होती है।[1]

वह अपने भक्तों को संसार की कोई भी वस्तु प्रदान कर सकती है–पुत्र, धन और स्वास्थ्य। अपने भक्तों को वह किसी भी प्रकार के कष्ट से मुक्त कर सकती है। चाहे कारागृह से मुक्त करना हो, रोग से छुटकारा दिलाना हो, पुत्र का जन्म हो, खोए हुए धन की प्राप्ति हो, चोर-डाकुओं का विनाश हो या आगजनी, बाढ़, वीयावान जंगल एवं महामारी से सुरक्षा प्रदान करना हो। मनुष्य का एकमात्र आश्रय के रूप में उसकी कल्पना की गई है।

नित्यं मांसबलिप्रिया मांसोदन-प्रिया।
तिथौ नवम्यां पूजां च प्राप्स्यसे सपशुक्रियांम्।।51[2]

एक-दूसरे सन्दर्भ में उसे आठ हाथों वाली कहा गया है। कुछ संस्करणों में उसकी देवी रूप में स्तुति में उसे एकानंशा कहा गया है।[3] एक पुत्र के समान उसे वृष्णियों के घर में लाया गया था। वह वृष्णियों की बहन है।[4] कृष्ण, बलराम एवं अन्य यादवगण के द्वारा द्वारका में एकानंशा की पूजा की जाती थी।[5]

यत्र ह्रीः श्रीः स्थिता तत्र यत्र श्रीस्तत्र संनतिः।
संनतिर्ह्रीस्तथा श्रीश्च नित्यं कृष्णे महात्मनि।।

---

1. हरिवंश - अध्याय 48/29-32
2. हरिवंश - क्रिटिकल एडीसन - पृष्ठ 326
3. हरिवंश - पृष्ठ 334
4. हरिवंश - पृष्ठ 334
5. हरिवंश - अध्याय 96/10-19

अध्याय 13

तंत्रों में काली की अवधारणा

शक्ति के मुख्य रूपों (प्रमुख अभिव्यक्तियों) में से एक है काली तथा वह दस महाविद्याओं में प्रथम है। भारत के धार्मिक एवं दार्शनिक चिन्तन के विकास में तंत्र और काली की उपासना एक महत्त्वपूर्ण कड़ी का निर्माण करते हैं। इस विषय का गहन अध्ययन करने के बाद भारतीय इतिहास के इस धुँधले एवं गूढ़ अध्याय पर किञ्चित् प्रकाश डाला जा सकेगा। वह तब सम्भव होगा, जब ज्ञान के इस भण्डार को पूर्णतया अन्वेषित किया जा सकेगा।

सामान्यतया कहा जा सकता है कि तंत्र शास्त्र हिन्दू-धर्मग्रन्थों के उस वर्ग को निर्दिष्ट करता है, जिसमें मनुष्य में छिपी हुई महती दिव्यशक्ति की अनुभूति के लिए भगवान् शिव एवं उनकी पत्नी देवी पार्वती के धार्मिक एवं दार्शनिक शिक्षाओं का वर्णन है, बल्कि यह उपनिषदों की शिक्षाओं का व्यावहारिक दर्शन एवं प्रयोग है। उपनिषदों में तो विभिन्न शाखाओं के प्रतिपादक होने के कारण, मतवैभिन्न्य भी है। यह (तंत्र) कई मार्गों एवं साधनों का विधान करता है; जिनके द्वारा मनुष्य आनन्द की प्राप्ति कर सकता है तथा उसके जीवन का परम ध्येय अपनी मंजिल पा सकता है। इसकी शिक्षा है कि कैसे मनुष्य शक्ति के रूप में स्वयं को देवी स्वीकार करके तथा इस (पूर्वोक्त) उद्देश्य के लिए निर्दिष्ट (अनुशासन) नियमों का पालन करके ईश्वरत्व एवं मोक्ष की प्राप्ति कर सकता है। इसका मूल स्वर है-'आओ प्रयोग करो और तुम्हारे सारे संदेह दूर हो जाएंगे।' जैसे औषधि के सेवन के बाद वह निश्चय ही रोग विनिर्मुक्त कर देती है, वैसे ही तंत्र के प्रयोगों को करने के बाद निश्चय ही अतिमानवीय एवं दिव्य शक्तियों का आविर्भाव होता है।

तांत्रिक धर्म समाज के सभी वर्गों के लिए खुला है। यह समाज के न केवल उच्चस्तर के व्यक्तियों का स्वागत करता है, बल्कि इसमें निम्नस्तरीय व्यक्तियों एवं स्त्रियों को भी आदर प्राप्त हैं। बिना किसी जातीय एवं पन्थगत भेदभाव के यह सभी व्यक्तियों के लिए सुलभ है। यही कारण है कि इसकी प्रतिष्ठा सभी को अंगीकार करने वाले सार्वजनिक धर्म के रूप में है। तंत्रों में कहा गया है कि पृथ्वी पर रहने वाले ब्राह्मण से लेकर अन्त्यज तक सभी मानव तंत्रों के कौलाचार[1] को अंगीकार करने के अधिकारी माने गए हैं।

'विप्राद्यन्त्यजपर्यन्तं द्विपदा येऽत्र भूतले।
ते सर्वेऽस्मिन् कुलाचारे भवेयुरधिकारिणः॥[2]

सिद्धान्तरूप में तंत्र शास्त्र भी धर्म का एक महनीय स्वरूप है। तंत्र में उल्लेख है कि यदि आध्यात्मिक कौल गुरु चाण्डाल, यवन, अन्त्यज एवं स्त्री को कौलाचार में दीक्षित करने के लिए तैयार नहीं होता है या उनकी अवमानना करता है, तो वह सबसे नीच व्यक्ति है और वह नरक का भागी है।

चाण्डालं यवनं नीचं मत्वा स्त्रियमवज्ञया।
कौलं न कुर्यात् यः कौलः सोऽधमो यात्यधोगतिम्॥[3]

एक धर्म से दूसरे में परिवर्तन या धर्म के एक सम्प्रदाय से दूसरे सम्प्रदाय में परिवर्तन की इस भावना को वैदिक और पौराणिक आस्था में शायद ही कभी सराहा गया हो। धर्म के एक सम्प्रदाय से दूसरे सम्प्रदाय में जाने वाले व्यक्ति को कम से कम कोई धार्मिक पुण्य नहीं ही प्राप्त होता है। किन्तु तंत्र में कहा गया है कि एक भी व्यक्ति यदि कौलाचार आस्था को अपनाता है (कौलाचार में दीक्षित होता है) तो उसे महान्

---

1. तंत्र अपने लक्ष्य की प्राप्ति के लिए सप्त आचारों या मार्गों का वर्णन करता है। वह हैं–वैदिक, वैष्णव, शैव, दक्षिण, सिद्धान्त, वाम और कौल। कौलाचार उनमें सर्वोत्तम एवं सर्वोत्कृष्ट माना गया है।
2. महानिर्वाणतंत्र - XIV, 184
3. वही - XIV, 187

धार्मिक पुण्य की प्राप्ति होती है–

'शताभिषेकाद् यत् पुण्यं पुरश्चर्याशतैरपि।
तस्मात् कोटिगुणं पुण्यमेकस्मिन् कौलिके कृते।।[1]

योग वशिष्ठ रामायण के समान तंत्र की भी शिक्षा है कि कैसे बिना सम्बन्धित हुए आनन्दित हुआ जाए और कैसे आनन्द के माध्यम से मोक्ष की प्राप्ति की जाए। तांत्रिक धर्म के साधक को अपने को सर्वप्रथम ईश्वरत्व के स्तर तक उठाना चाहिए। यदि वह ऐसा नहीं कर सकता है तो उससे यह आशा नहीं की जा सकती कि वह किसी दिव्य सत्ता की पूजा करे या उसका नैकट्य प्राप्त कर सकेगा।

'देव एव यजेद् देवं नादेवो देवमर्चयेत्।[2]

विश्व के लगभग सभी प्राचीन एवं आधुनिक धर्मों में किसी न किसी रूप में तंत्र के सिद्धान्त और मत पाए जाते हैं। तंत्रों के रहस्यमय अक्षर बीज मन्त्र वैदिक, पौराणिक एवं कई अन्य अर्थों में दृष्टिगोचर होते हैं।

तांत्रिक द्रष्टाओं ने कहा है कि यद्यपि तंत्रों की भाषा दुरुह नहीं है, तथापि शायद ही क़ोई विषय इतना गूढ़ और दुष्कर हो। यथा, इसे किसी समर्थ आध्यात्मिक सद्गुरु की सहायता से केवल प्रयोग और अनुभव के द्वारा ही समझा जा सकता है। इसके ग्रन्थों का केवल पुस्तकीय (बौद्धिक) व्याख्याओं से अवबोध नहीं हो सकता। केवल एक वास्तविक गुरु अर्थात् सद्गुरू ही प्रायोगिक एवं धार्मिक दार्शनिक प्रदर्शनों के द्वारा इसके रहस्यों को अनावृत कर सकता है।

तांत्रिक धर्म की पाँच मुख्य शाखाएँ है–शाक्त, शैव, वैष्णव, सौर एवं गाणपत्य। शाक्त सम्प्रदाय शक्ति की उपासना एवं उसकी अनुभूति से सम्बन्धित है जिसकी कल्पना सर्वोच्च देवी एवं जगत् जननी के रूप में

---

1. महानिर्वाणतंत्र - XIV, 188
2. गन्धर्व तंत्र - VIII 1

की गई है। जब-जब धर्म की अवमानना होती है जब-जब सज्जन, धर्मात्मा एवं सात्विक व्यक्ति दुष्टों एवं दानवों के द्वारा उत्पीड़ित, संतापित एवं दमित किए जाते हैं तब-तब शक्ति या मातृदेवी विश्व में अवतार लेती है (व्यक्तित्व धारण करती है), फिर उन दुष्टों एवं दानवों का संहार करके जगत् में धर्म कानून और व्यवस्था को पुनः स्थापित करती है–

'इत्थं यदा यदा बाधा दानवोत्था भविष्यति।
तदा तदावतीर्याहं करिष्याम्यरि-संक्षयम्।।[1]

उपासकानां कार्यार्थं श्रेयसे जगतामपि।
दानवानां विनाशाय धत्से नानाविधास्तनूः।।[2]

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्।।

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे।।[3]

किन्तु यह चौंकाने वाली बात है कि वेद में कोई भी सूक्त (मंत्र) प्रत्यक्ष रूप से काली को सम्बोधित नहीं है। फिर भी ऋग्वेद में कई सन्दर्भों में यथा– वज्रपति इन्द्र (बिजली-मेघ के देवता इन्द्र), रात्रि-देवता वरुण, रात की देवी एवं वाक्सूक्त या देवी सूक्त में उसकी प्रतीति होती है। ऋग्वेद के खिल-सूक्त की देवी रात्रि[4] या दुर्गा से भी उसकी निकट सदृशता है। केनोपनिषद् की उमा से उसकी समरूपता को तो इन्कार नहीं किया जा सकता है। मुण्डकोपनिषद् (1, 2, 5) में वह अग्नि की सप्तजिह्वाओं या ज्योति में से एक का प्रतिनिधित्व करती हुई दिखाई देती है। कालिकोपनिषद्

1. सप्तशती - XI ,55.
2. महानिर्वाण तंत्र - IV,16
3. भगवत् गीता - IV, 7 88
4. cf. रात्रीं प्रपद्ये जननीं सर्वभूतनिवेशनीम्
   भद्रां भगवतीं कृष्णां विश्वस्य जगतो निशाम्।।
   (ऋग्वेद-खिल-रात्रि सूक्त, मंत्र 7 4 (Stanza)

के बारे में कहा जाता है कि वह अथर्ववेद के सौभाग्यकाण्ड से सम्बन्धित है। उसमें भी काली की उपासना के कुछ पहलुओं पर प्रकाश डाला गया है। यहाँ उसकी पहचान सर्वोच्च आत्मा (परमात्मा) के साथ की गई है।

'अथ ह एनां ब्रह्मरन्ध्रे ब्रह्मरूपिणीमाप्नोति।[1]

तंत्रों एवं पुराणों में वर्णित काली, दुर्गा एवं अन्य शक्तियों तथा राक्षसों के युद्ध का उल्लेख करना यहाँ अन्यथा नहीं होगा। इन युद्धों को वेद में चित्रित देवासुरों (देवताओं और राक्षसों) के लाक्षणिक (अन्योक्तिपरक) युद्धों की प्रस्तावनाओं का ही एक प्रकार माना जा सकता है। हालांकि ऋग्वेदीय युद्धों को प्राचीन मनीषियों ने विभिन्न दृष्टिकोणों से समझा है और उसकी व्याख्या की है।

यह बात ध्यातव्य है कि महाभारत[1] के दुर्गा-स्तोत्र, पुराणों विशेषकर मार्कण्डेय पुराण के प्रसिद्ध सप्तशती' एवं तंत्रों में स्पष्टरूप से काली एवं दुर्गा का वर्णन किया गया है, जिसे काली, महाकाली, मंगलाकाली और भद्रकाली भी कहा जाता है। किन्तु ये विभिन्न देवियाँ नहीं है। वास्तव में वे एक और सर्वोच्च दिव्य शक्ति के विभिन्न पहलुओं का प्रतिनिधित्व करती हैं।

अथर्ववेद[2] में कहा गया है कि काल या महाकाल से बढ़कर कोई दूसरी शक्ति नहीं है।

'तस्माद वै नान्यत् परमस्ति तेजः।

काली देवी काल की शक्ति के प्रतीक के अलावा और कुछ भी नहीं है जिसे सर्वविध्वंसक के रूप में भी जाना जाता है। जैसे अग्नि की

---

1. कालिकोपनिषद्, प्रथम पंक्ति
2. मायेत् सा ते यानि युद्धान्याहुर्नाद्य शत्रुं ननु पुरा विवित्से। (ऋग्वेद - X, 54. 2)
3. महाभारत, पर्व - IV & VI
4. अथर्ववेद - 195/4

ज्योति अग्नि की आत्मा है वैसे ही काल की शक्ति काली भी काल की आत्मा और सार है। उसके (काली के) बिना काल पूर्णरूपेण शक्तिहीन है। यर्थाथतः यह काली ही है, न कि काल, जो कि विश्व के प्रलय के समय सबका यहाँ तक कि महाकाल का भी संहार करती है।

'कलनात् सर्वभूतानां महाकालः प्रकीर्तितः।
महाकालस्य कलनात् त्वमाद्या कालिका परा।।'[1]

काली को कालरात्रि भी कहा जाता है। जिसका आविर्भाव जगत्-प्रलय की रात्रि का अन्त होने पर होता है। वही पुनः जगत् का सृजन भी करती है, यदि उसमें इस उद्देश्य के लिए इच्छा जागृत हो जाए। काली का रंग काला है तथा उसकी रूपाकृति बहुत डरावनी है। जीभ उसकी बाहर निकली हुई है। उसके हाथ चार हैं–एक में तलवार, दूसरे में नरमुण्ड, तीसरा वरदान देता हुआ तथा चौथा भय को मिटाती हुई मुद्रा में है। वह नंगी (बिना वस्त्र) रहती है तथा मुण्डों की माला धारण करती है। वह श्मशान में एक शव पर खड़ी रहती है (पैर धरे रहती है)। यही उसका ध्यान है।

करालवदनां घोरां मुक्तकेशीं चतुर्भुजाम्।
एवं संचिन्तयेत् कालीं श्मशानालय वासिनीम्।।[2]

यह जानना बहुत रुचिकर है कि काली की छवि को बनाने वाले विभिन्न तत्त्व प्रतीकात्मक हैं। उसके हाथ उसके द्वारा किए जाने वाले संहार, सृजन एवं पालन की गतिविधियों के परिचायक हैं। कृपाण एवं नरमुण्ड का अभिप्राय संहार है, वरदहस्त सृजन का एवं भय को दूर करता हुआ उसका हाथ पालन का प्रदर्शक है। उसकी भयानक आकृति विध्वंस की एवं उसकी असीम शक्ति की प्रतीक है। काला रंग यह द्योतित करता है कि वह अंधकार में छिपी हुई तमोरूपिणी है–

---

1. महानिर्वाण तंत्र - IV, 31
2. कालीतंत्र - I , 27-36

सृष्टेरादौ त्वमेकासीत् तमोरूपमगोचरम्।[1]
तम् आसीत् तमसा गूढमग्रे।[2]
आसीदिदं तमोभूतम्।[3]

उसकी नग्नता का अर्थ यह है कि उसके द्वारा सकलजगत् का विनाश होता है और एकमात्र वही, काल की शक्ति शेष रहती है। उसकी मुण्डों की माला का अभिप्राय यह है कि जो कुछ भी जीवित है–न केवल वे उस पर (काली पर) आश्रित हैं। बल्कि मृत्यु के बाद जो कुछ भी बचता है, वह भी उसी पर निर्भर हैं। मृत्यु सम्पूर्ण विनाश नहीं है। मृत्यु के बाद भी पिछले जीवन के कुछ चिह्न दूट जाते हैं। ये अवशेष भी उसी (काली) पर आश्रित रहते हैं। इसलिए उसकी छाती मुण्डों की माला से अलंकृत है। उसका तात्पर्य यह है कि एक बार तो उसने जीवन का परिपोषण किया किन्तु मृत्यु के बाद जो कुछ भी अवशेष बचा है, उसको भी सहारा देने वाली वही है। जिस शव पर वह खड़ी रहती है, वह प्रलय कालीन विश्व का प्रतीक है। जगत के प्रलय के समय काल की शक्ति, काली और केवल काली ही शेष रहती है। यहाँ तक कि शिव या महाकाल या पुरुष, जो पूरे विश्व के साथ समीकृत है, वह भी ऐसे हो जाता है, मानो वह एक लाश हो। इस सन्दर्भ में यह बड़ा रोचक है कि महाकाल या शिव शब्द से यदि 'इ' जो कि उसकी शक्ति (काली) का द्योतक है, को हटा दें तो वह शव हो जाता है।श्मशान, जहाँ उसकी उपासना की जाती है, जगत् के प्रलय के विकराल दृश्यों को सूचित करता है। वहीं पर वह फिर से जगत् का सृजन भी करती प्रतीत होती है। संक्षेप में यही काली की छवि का प्रतीकात्मक अर्थ है।

काली की अवधारणा को उसकी उपासना के लिए रहस्यमयी चित्राकृति–यंत्र एवं रहस्यमयी अक्षरों–मंत्रों के द्वारा स्पष्ट किया जाता है किन्तु यंत्र उसकी छवि से भी गूढ़ और सूक्ष्म है जबकि मंत्र तो उसकी

---

1. महानिर्वाणतंत्र - IV, 25
2. ऋग्वेद - X, 129,3
3. मनु - 1,5.

प्रकृति, कार्य और दर्शन को अभिव्यक्त करने वाले जितने भी साधन है—सबसे सूक्ष्मतम और गूढतम है। तोडलतंत्र (पटल 3) में काली के और विभिन्न रूपों का वर्णन किया गया है। वे हैं– दक्षिण काली, सिद्ध काली, गुह्यकाली, श्रीकाली, भद्रकाली, चामुण्डा काली, श्मशान काली और महाकालीं। इनमें से प्रत्येक रूप एवं दशविद्याओं में से भी प्रत्येक काल की शक्ति, काली के विभिन्न पहलुओं एवं विभिन्न गतिविधियों को प्रदर्शित करते हैं।

धूमावती का चित्र, जो कि दस महाविद्याओं में से एक है, काली के महत्वपूर्ण पहलुओं में से एक का निरूपण करता है। तंत्रों में यह देखा गया है कि सभी महाविद्याओं का अपना स्वामी या पति है। किन्तु धूमावती के साथ कोई भी स्वामी या पति नहीं है।

धूमावती महाविद्या विधवारूपधारिणी।[1] ऐसा क्यों है? इसका उत्तर यह दिया जा सकता है कि जगत् के प्रलय के समय, जबकि महाकाल, काली के पति भी शेष नहीं बचते तो वह विधवा होकर धूमावती के रूप में दृष्टिगत होती हैं। जो भूखी-प्यासी, दुबली-पतली थकी हुई तथा अपनों से विरक्त सी दिखती है। उसका न तो कोई पति है, न बच्चे, न मित्र और न ही कोई रिश्तेदार। इतना ही नहीं उसने अपने लिए कुछ खाने पीने के लिए भी नहीं छोड़ा–

विवर्णा चंचला रुष्टा दीर्घा च मलिनाम्बरा।
क्षुत्पिपासार्दिता नित्यं भयदा कलहप्रिया।।[2]

तथापि इन सभी का सीधा-सा अर्थ यह है कि धूमावती काल की शक्ति को द्योतित करती है और खुद देश और काल से परे है। वह अकेली है, विकराल है और किसी से भी सम्बन्धित नहीं है, किन्तु काली केवल विध्वंस के पहलू से ही नहीं, बल्कि सृजन ओर पालन से भी सम्बन्धित है। वह महाकाल या शिव के शव पर भी खड़ी रहती है तथा उसकी

1. टोडलतंत्र, पटल - I
2. कृष्णानंद का तंत्रसार अ. II

पूजा के साथभी, जो कि पतिरूप हैं, साथ रहती है–

महाकालं महाकायं शुद्धस्फटिकरूपिणम्।
हृदि दक्षपदं देव्या ऊरौ वामपदं घृतम्
शवरूपमहादेवं शवसिद्धिप्रदायकम्॥
महाकालं यजेद् देव्या दक्षिणे धूम्रवर्णकम्।
परमानन्दरूपाख्यं भैरवं परमेश्वरम्॥[1]

यह महाकाल सर्वशक्तिशाली शाश्वत समय (काल) के सिवा कुछ भी नहीं। काली उसकी महत्वपूर्ण ऊर्जा एवं शक्ति है। उसके बिना शिव मृतप्राय है और यहाँ तक कि महाकाल या शिव भी एक शव के समान है।

शक्त्या विना शिवे सूक्ष्मे नाम धाम न विद्यते।[2]

संहाररूपिणी काली यदाव्यक्तस्वरूपिणी।
तदैव सहसादेवी शवरूपः सदाशिवः।[3]

सज्जन और उत्कृष्ट व्यक्तियों के लिए काली कृपालु है जबकि बुरे एवं दुष्ट लोगों के लिए वह विकरालरूपवाली (करालवदना) है। जब वह मुस्कराती है तो जगत् का आविर्भाव होता है और जब वह खिन्न हो जाती है तो विश्व का सर्वनाश होता है। वह अपनी दिव्याकृति एवं क्रिया दोनों में है–विस्मयी प्रेरणाप्रदा एवं आश्चर्य रूपिणी, महान और दयालु है। अगाध भक्ति एवं पूर्ण आत्मसमर्पण के द्वारा उसका नैकट्य आसानी से प्राप्त किया जा सकता है। तथा उसका आशीर्वाद प्राप्त किया जा सकता है। उसका मार्ग उन्हीं लोगों के लिए है, जो वीर एवं साहसी हैं। कायर और अनिश्चयी व्यक्ति उस मार्ग पर नहीं चल सकते।

यह कहा जा चुका है कि काली जगत् के प्रलय की एवं अंधकार एवं भयानक रात की देवी है। वह उस रात्रि के अन्त में आविर्भूत होती है तथा शिव के शरीर पर खड़ी होती है। मानो शिव का शरीर जगत् का

1. दक्षिणकालिका पूजा प्रयोग
2. शक्ति संगम तंत्र, कालीखण्ड - I, 98.
3. तोडल तंत्र, पटल - I

मलवा हो। सचमुच यह एक भयानक पृष्ठभूमि है जिस पर काली की अवधारणा एवं उपासना निर्भर है। बगैर इसके किसी विकल्प के द्वारा काली का सच्चा महत्त्व एवं उसकी उपासना को अनुभूत नहीं किया जा सकता। इसलिए तंत्र का निर्देश है कि काली की उपासना अमावस्या की अँधेरी अर्धरात्रि में किसी श्मशान में की जानी चाहिए। वह श्मशान हड्डियों एवं कपालों तथा चिता की जली-अधजली लकड़ियों से भरा होना चाहिए। उसकी साधना को यदि इसी रूप में अनुष्ठित किया जाए तो साधक अलौकिक शक्ति एवं पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने में समर्थ हो जाता है, जिसकी परिणति शान्ति, समृद्धि, ईश्वरत्व और अन्ततः मोक्ष के रूप में होती है-

'य एवं पूजयेद् देवीं नियमे पितृकानने।
तस्य चाज्ञाकराः सर्वे सिद्धयोऽष्टौ भवन्ति हि॥
एनां ज्ञात्वा यजेन्मन्त्री सुख-मोक्षफलप्रदाम्।[1]

काली-उपासना का सच्चा महत्त्व यह है कि यह काल की शक्ति के रहस्य को अनावृत्त करता है, तथा यह दर्शाता है कि कैसे कोई साध क मृत्यु एवं विनाश के भय से मुक्त हो सकता है। कैसे वह यह अनुभूत कर सकता है कि वह शक्ति का बालक है या वह स्वयं ही शक्ति है-

कालिरूपमात्मानं विभावयेत्।[2]

---

1. कालीतंत्र - V , 6 14
2. कालिकोपनिषद्।

अध्याय 14

शक्तिवाद का दार्शनिक आधार

शक्तिवाद, गतिशील हिन्दूवाद का ही एक रूप है। संश्लेषण (संयोग) एवं समाधान के रूप में यह हिन्दूवाद ही है। पौराणिक दृष्टिकोण से देवी, विष्णु की बहन (हरि-सहोदरी), शिव की पत्नी (कपाली-प्राणनायिका) तथा गणेश एवं सुब्रह्मण्यम् की माँ है। इस प्रकार देवताओं के सर्वोच्च समूह में उसका स्थान केन्द्रीय है। दार्शनिक दृष्टिकोण से शक्तिवाद का अविकार परिणामवाद[1], आरम्भवाद, परिणामवाद एवं विवर्तवाद के बीच चिरकाल से चले आ रहे संघर्ष एवं मतवैभिन्न्य को मिटाने का एक भागीरथ प्रयास है। विश्वोत्पत्ति के सिद्धान्त के दृष्टिकोण से शक्तिवाद सांख्यसिद्धान्त[2] का विस्तृत एवं परिवर्द्धित रूप है। साथ ही, यह कपिल मुनि के ईश्वर-विहीन ब्रह्माण्ड को एक बार फिर से ईश्वर से संपृक्त करता है। धार्मिक साधना

---

1. इस सिद्धान्त की विस्तृत व्याख्या के लिए श्री वरिवस्यारहस्य के श्लोक-3 को देखें-
   स जयति महान्प्रकाशो यस्मिन्दृष्टे न दृश्यते किमिति।
   कथमिव तस्मिन् जाते सर्वं विज्ञानमुच्यते वेदे।।
   एवं इस पर तमिल में ब्रह्मर्षि एन सुब्रमण्य अय्यर की टीका भी द्रष्टव्य है (ब्रह्मविद्या विमर्शनी सभा पब्लिकेशन, सीरिज-3)-श्लोक का प्रथम भाग विवर्तवाद से तथा उत्तरभाग अविकार परिणाम वाद से सम्बद्ध हैं। सिद्धान्त का सार यह है कि यद्यपि जगत् ब्रह्म का ही परिणाम है, तथापि ब्रह्म में खुद कोई विकार उत्पन्न नहीं होता। दूध ओर दही या मिट्टी ओर घड़ा जैसा यहाँ विकार उत्पन्न नहीं होता।
2. सांख्य दर्शन के अनुसार (क) पुरुष और प्रकृति एक दूसरे से भिन्न हैं। शाक्त दर्शन में शक्ति और शिव मिलकर पूर्ण का निर्माण करते हैं।

के विचार से देवी स्वयं ही सर्वोच्च साधना है, जैसा कि केनोपनिषद् में वर्णित है, उसी के द्वारा साधक के हृदय में ईश्वरीय ज्ञान का स्फुरण होता है (शिवज्ञान प्रदायिनी)।

शक्तिवाद की विशेष महत्ता साधना पर बल देने के कारण है। साधना के बिना सिद्धि सम्भव नहीं (हो सकती)। किसी वस्तु को उसकी समग्रता में जानने का अर्थ स्वयं वह वस्तु हो जाना है। ब्रह्म को जानने का अभिप्राय है स्वयं ब्रह्म हो जाना या ब्रह्म की अनुभूति। चैतन्य के रूप में शक्ति की स्वीकृति ही शक्तिवाद की विशिष्टता है। संक्षेप में ब्रह्म स्थिर शक्ति है और शक्ति गतिशील। एवं ब्रह्म स्थिर शक्ति (स्थैतिक) है और शक्ति गतिशील ब्रह्म (गतिज) है। तांत्रिक साहित्य में मंत्र, कर्मकाण्ड और योग-साधनाएँ वर्णित हैं, जिसे वैदिक साधना का परिशिष्ट कहा जा सकता है। इनके द्वारा सहज ढंग से सर्वोच्च लक्ष्य की प्राप्ति होती है और यहाँ जाति व लिङ्ग का कोई भेद नहीं है। शक्तिवाद की सर्वोच्च महत्ता उसके इस दृढ़ विचार में है कि प्रत्येक व्यक्ति में अन्तरवर्ती उर्जा या शक्ति है। हर्ष या आनन्द की शक्ति, प्रेम की शक्ति, सेवा की शक्ति एवं त्याग की शक्ति–इस शक्ति के रूप हैं। हिन्दू धर्म के सभी सम्प्रदायों से साम्यता रखते हुए शक्तिवाद भी भौतिक एवं नैतिक दृष्टिकोण से स्वस्थ जीवन का उपदेश देता है। इन आधारभूत तथ्यों को स्वीकारने में इसमें कोई हिचक नहीं है। कठोपनिषद् की स्पष्ट घोषणा है कि जो बुरे कर्मों से अपने को दूर नहीं रख पाता है एवं जिसके पास मानसिक शान्ति तथा आत्मनियंत्रण नहीं है, वह किसी भी साधना के द्वारा ईश्वर को प्राप्त नहीं कर

(ख) सांख्य जड़ शक्ति से ही संतुष्ट है, लेकिन शाक्त चित्शक्ति में भी विश्वास करता है।

(ग) शाक्त तत्त्व, सांख्य तत्त्वों से अधिक पूर्ण हैं (24 के बदले 36, षड्त्रिंशत तत्त्वानि विश्वग्) साथ ही देखें, श्रीविद्या सपर्या, संपादक–एन.सुब्रमण्य अय्यर (ब्रह्मविद्या विमर्शनी सीरिज-5) - पृष्ठ 27

1. केन उपनिषद् - IV, 7 एवं 8

सकता।[2]

आज भी शाक्त-धर्म के वाममार्गीय दृष्टिकोण के बारे में बहुत सी गलत धारणाएँ हैं। वाममार्ग एवं पञ्चमकार केवल उन्हीं लोगों के लिए प्रयुज्य हैं, जिनके लिए मांस-मदिरा का कोई निषेध नहीं है। अगस्त्य-सूत्र[3] इस बात को और अधिक स्पष्ट एवं संशयशून्य बनाता है। ये पञ्चमकार हैं—मद्य, मत्स्य, मांस, मैथुन एवं मुद्रा (रहस्यपूर्ण भाव भंगिमाएँ)। यह दुर्भाग्य की बात है कि कुछ साधकों ने वाम मार्ग का आश्रय इसलिए लिया ताकि वे निषेधित भोजन एवं मदिरा तथा निषेधित यौन-सम्बन्धों के द्वारा आनन्द प्राप्त कर सकें। वास्तव में वाममार्ग शक्तिवाद के सिद्धान्तों एवं व्यवहारों का अतिवादी प्रयोग (मार्ग) है। नग्न स्त्री की उपासना का अर्थ था हमारे यौन-दृष्टिकोण को आध्यात्मिकता (स्वास्थ्य) प्रदान करना तथ कामुकता को दूर करना। किन्तु बहुधा इस अपूर्ण संसार में पतन के मार्ग (नारकीय पथ) को अच्छे इरादों से ढाँप दिया जाता है। साथ ही पञ्चमकारों के गोपनीय (गुह्य) पहलू को लोगों द्वारा सामान्यतया भुला दिया गया है। चिच्चन्द्र, जिसे योग में मण्डल कहा गया है, से स्रावित होने वाले अमृत रस को मद्य कहा गया है। उपवास के द्वारा साधक के शरीर में एकत्रित अतिरिक्त उर्जा द्वारा भौतिक भूख (बाह्य क्षुधा) का नियंत्रण ही मांस है। इडा और पिङ्गला नाड़ी मत्स्य एवं मुद्रा है। आत्मा एवं परमात्मा (सर्वोच्च आत्मा) की एकता का आनन्द ही मैथुन है।

जैसे वेदान्त के कई सम्प्रदाय हैं, वैसे ही शक्तिवाद की भी अनेक धाराएँ हैं। उनमें वेदान्त-सूत्रों की विभिन्न प्रकार से व्याख्या की गई है। यहाँ तक कि शक्तिवाद और वेदान्त के बीच कुछ सिद्धातों में मतभेद भी दृष्टिगोचर होते हैं। शैव-शाक्तों के सिद्धान्त वेदान्त की विशिष्ट व्याख्या

---

1. नाविरतो दुश्चरितान्नादान्तो नासमाहितः।
   नाशान्तमनसो वापि प्रजाने नैनमाप्नुयात्।।
   कठोपनिषद्, द्वितीयावल्ली - 24
2. अध्याय IV, 66-68 फ्राम ए. एम.एस. कॉपी इन पोजेसन ऑफ दीवान बहादुर के.एस.रामास्वामी शास्त्री-सूत्रों की कुल संख्या 300 है।

प्रस्तुत करते हैं। यहाँ शङ्कराचार्य से बहुत जगहों पर मतभेद भी है। यद्यपि जीवात्मा और परमात्मा की एकता के मौलिक प्रश्न पर ये शङ्कर से सहमत हैं और इस प्रकार ये अद्वैतवादी ही हैं। इस प्रकार आगम वेदान्त की एक व्याख्या है, वह व्याख्या जो निस्सन्देह व्यावहारिक लक्ष्यों से प्रभावित है एवं जिसका यह शास्त्र भी अनुमोदन करता है।[1] इस प्रकार निष्कर्ष स्वरूप हम कह सकते हैं कि शाक्ततन्त्र अद्वैतवाद के साधना-शास्त्र हैं।

इसलिए वेदों और आगमों की एकता का स्मरण करते हुए हम दृढ़तापूर्वक स्वीकार कर सकते हैं कि शक्तिवाद वेदान्त का ही एक पहलू है। यह कहा जा सकता है कि शक्तिवाद पूर्णरूप से वैदिक है तथा यह हिन्दूवाद की सभी धाराओं एवं सम्प्रदायों के बीच समन्वय स्थापित करता है। मनुस्मृति के टीकाकार कुल्लूक[1] भट्ट अपने भाष्य में कहते हैं कि श्रुति दो प्रकार की हैं—वैदिक और तांत्रिक। वेदान्त सूत्रों की व्याख्या करते हुए श्रीकण्ठ परिभाषिक पदों[2] में कहते हैं कि वेदों और आगमों के बीच कोई भेद नहीं है, अपितु वास्तव में ये सब एक ही हैं। त्रिशती पर भाष्य[3] करते हुए शङ्कर का कहना है कि महावाक्यों (तत्वमसि आदि) के रूप में देवी ब्रह्मविद्या है। कुलार्णव तंत्र का मत है कि कौलधर्म वेदों[4] पर आधृत है एवं षड्दर्शन कौल सिद्धान्त की ही शाखाएँ[5] हैं। शङ्कर के प्रपञ्चसार में भी वैदिक महावाक्यों[6] का उल्लेख हुआ है। निरुत्तरतंत्र ने तंत्र को पाँचवा वेद माना है।[7] महारुद्रयामल का तो यहाँ तक कहना है कि जो वैदिक आचार से रहित है, वह शक्तिवाद के लिए अयोग्य है।[8] महानिर्वाण तंत्र में मंत्र 'ओम् सच्चिदानन्दं ब्रह्म' प्रतिष्ठित है।[9]

1. शक्ति एण्ड शाक्त - पृष्ठ 27
2. मनुस्मृति - II/1
3. श्रुतिश्च द्विविधा वैदिकी तांत्रिकीच। मनु अ. II.II.8
4. कलेक्टेड वर्क्स ऑफ शङ्कर, वाणी-विलास, सं. Vol. XVIII पृष्ठ 285.86
5. तस्मात् वेदात्मकं शास्त्रं विद्धि कौलात्मकं प्रिय। कुलार्णव तंत्र
6. शक्ति एण्ड शाक्त - पृष्ठ 45
7. वही
8. वही
9. वही

इन (शास्त्रीय) साहित्यिक प्रमाणों के आधार पर निस्संदेह प्रमाणित होता है कि शक्तिवाद पूर्णरूपेण अपने चरित्र में वैदिक है। इस प्रकार निश्चय के साथ कहा जा सकता है कि कलियुग के लिए तंत्र विशेष वेद है। यह अद्वैत सिद्धान्त को स्वीकार करता है तथा जीवात्मा एवं परमात्मा (शिव-शक्ति) की मौलिक एकता का प्रतिपादन करता है। पुनः यह पुनर्जन्म एवं कर्म के सिद्धान्त को भी मान्यता प्रदान करता है। साथ ही यह संस्कार, आचार एवं विविध योग तत्त्वों को स्वीकार करता है। जीवन के सर्वोच्च लक्ष्य के रूप में मोक्ष का स्वीकरण यह दृढ़ता के साथ करता है। ईश्वर नाम एवं रूप से परे है। यहाँ तक कि वह लिङ्ग से भी ऊपर है किन्तु सगुण-सम्प्रदाय में या तो पिता या माता के रूप में ही ईश्वर की अनुभूति हो सकती है। ईश्वर को शिव-शक्ति (चैतन्य और उसकी शक्ति) कहा गया है। श्री शङ्कर के सौन्दर्यलहरी[1] के प्रथमश्लोक में कहा गया है कि जब शिव शक्ति के साथ एकाकार होते हैं तो उनसे ब्रह्माण्ड का आविर्भाव होता है तथा वे ही उसे सहारा देते है। किन्तु जब वे शक्ति से अलग होते हैं तो क्रिया विधि (गतिविधि) का एक भी कण उनसे संश्लिष्ट नहीं होता। सभी पहलुओं के एक अन्य समन्वय (समाधान) पाते हैं। अद्वैतवाद का जोर एकता पर है, विशिष्टाद्वैत एकता में त्रैतवाद का समर्थन करता है तथा द्वैतवाद का बल अनेकता पर है। केवल एक तत्त्व की सत्ता में विश्वास के कारण अद्वैतवाद के लिए जगत मिथ्या हो जाता है। निश्चय ही मिथ्या का अभिप्राय अयथार्थ माया या अनस्तित्व से नहीं है। इसका अभिप्राय सापेक्ष एवं घटना-विषयक अस्तित्व से है। लेकिन इस से कोई असर नहीं पड़ता, क्योंकि ब्रह्म और ब्रह्माण्ड (जगत्) के साथ शक्ति के सम्बन्ध के अभाव के कारण ब्रह्माण्ड की अयथार्थता में परिवर्तन उत्पन्न होता है, जैसा

---

1. महानिर्वाण तंत्र - II.V.V. 34.36 तांत्रिक टेक्ट्स - Vol. XIII.
2. शिव:शक्त्या युक्तो यदि भवति शक्तः प्रभवितुं
   न चेदेवं देवो न खलु कुशलः स्पन्दितुमपि।
   अतस्त्वामाराध्यां हरिहरविरिञ्चादिभिरपि
   प्रणन्तुं स्तोतुं वा कथमकृतपुण्यः प्रभवति।। सौन्दर्यलहरी
3. गीता अ. -VII 45

कि अद्वैत सिद्धान्त प्रतिपादित करता है। इसके कारण न केवल अद्वैतवाद के कुछ सम्प्रदाय जगत् की यथार्थता का पूर्णरूप से निषेध करते हैं। अपितु श्रीशंकर भी निश्चित रूप से घोषणा करते हैं कि जगत् एक सापेक्षिक या घटना विषय यथार्थ (व्यवहारिक सत्ता)[1] है, जो सम्प्रदाय त्रैतवाद एवं अनेकवाद पर जोर देते हैं, वे एकत्व (एकता) के सर्वोच्च सिद्धान्त से काफी दूर हैं। (अद्वैतवाद) विश्व की उपासना पद्धति में भारतीय चिन्तन का यह एकत्ववाद महानतम (सर्वोत्कृष्ट) उपहार है। कारण, भक्ति के सिद्धान्त में तो हिन्दूधर्म के साथ-साथ अन्य धर्म भी खड़े हैं, किन्तु सोऽहम् के सिद्धान्त (जो शक्तिवाद में साऽहम[2] हो गया है) का प्रतिरूप भारत के बाहर कहीं नहीं मिलता।

जगत् के प्रति शाक्त और प्रचलित निराशावादी हिन्दू धर्म के दृष्टिकोण का अन्तर रोचक है। मानवीय चिन्तन में स्वभावतया केवल दो धाराएँ चलती रहती हैं। आशावादी विचारधारा आनन्द और शाश्वत (भविष्य-जीवन) के विवेक पर आधृत है, जबकि निराशावादी विचारधारा अदृश्यता, दुःख और दर्द पर आधृत है। कई उदाहरण[3] मिलते हैं जिनमें कहा गया है कि आनन्द से जगत् की उत्पत्ति होती है, तथा उत्पन्न होकर आनन्द में ही रहता है, एवं अन्त में आनन्द में ही प्रविष्ट हो जाता है। कुछ दूसरे उद्धरण[4] भी मिलते हैं जिनका कहना है कि जगत् अनित्य एवं आनन्दविहीन (असुख) है। कुछ अन्य दृष्टिकोण जगत् की व्याख्या केवल दृष्टिगोचर पदार्थ के रूप में या केवल माया के रूप में करते हैं। यद्यपि उपर्युक्त कथित विभिन्न पहलुओं का अपने आप में कोई अर्थ नहीं है, लेकिन वे सापेक्षिक सत्य हैं। शाक्त सिद्धान्त के अनुसार हमें अपना मत मौलिक सत्य के और अधिक निकट स्थापित करना चाहिए। शक्ति चिद्रूपिणी एवं आनन्द रूपिणी है। प्रकृति या भौतिक जगत् उसकी ही लीला और उसका ही प्रकाशन

1. शंकर भाष्य, ब्रह्मसूत्र - II. 1.14
2. महानिर्वाणतंत्र - VIII, 264-265 एवं देखें
   द गारलैण्ड ऑफ लेटर्स (1952) पृष्ठ 107
3. तैत्तिरीय उपनिषद् - III.6.
4. गीता - VIII.15

है। इस विचार के परिणामस्वरूप जगत् का वास्तविक (यथार्थ) एवं आनन्दपूर्ण चरित्र उपस्थित होता है। हम इस जगत् का आनन्द तो उठा सकते हैं, किन्तु सम्प्रति आनन्द लेने में असमर्थ हो गए हैं। कारण एक ही है और वह है हमारे मन का इच्छा तत्त्व, जो हमारे लिए दुःख और दर्द का जाल बुनता ही चला जा रहा है। शान्त और प्रसन्न चित अवस्था में इच्छाविहीन तथा समर्पित मन के द्वारा हम उसकी लीला का आनन्द उठा सकते हैं। रुद्रयामलतंत्र में देवी कहती है—"मेरे ध्यान में आत्मसंयम और पीड़ा की आवश्यकता नहीं है।

इस प्रकार शक्तिवाद में चित्‌शक्ति, माया शक्ति सूक्ष्म जगत और स्थूल जगत्-(सम्पूर्ण संसार) दोनों के परे हैं। विकास-श्रेणी का यह उद्‌गम बिन्दु है, जिसकी उच्चतम अभिव्यक्ति आनुभविक जगत् और पञ्चकोशों एवं तीन अवस्थाओं सहित अनुभवशील अहंकार में होती है। यह अनन्त शाश्वत चैतन्य, प्रेम और आनन्द हैं यह वेदान्त के सगुण ब्रह्म के अनुरूप है, जबकि शिव निर्गुण ब्रह्म के अनुरूप है। खनिज जगत् में अनुभव का कारण यही है, वनस्पति जगत् एवं मानव जगत में विचार और भावना का कारण यही है। उत्तेजना और परमाणविक धारणा के प्रति उत्तर के मौलिक सम्बन्ध एवं अस्तित्व का अनुभवीकरण एवं रहस्योद्‌घाटन भारतीय चिन्तन के लिए-खासकर शक्ति दर्शन के लिए विशेष गौरव की बात थी।

शाक्त दर्शन के अनुसार माया शक्ति केवल शिव है, जिसमें उसे जगत् का उपादान कारण माना गया है। सर जॉन वुडरोफ ने जगत् को देखने के अद्वैत-वेदान्त एवं शाक्तवेदान्त के दो प्रशंसनीय दृष्टिकोण की सम्यक् व्याख्या की है। उनका कहना है[1]—"शङ्कर कहते हैं सचमुच कोई सृष्टि नहीं है। इसलिए यह (जगत्) कैसे उत्पन्न हुआ है—यह प्रश्न ही अप्रासङ्गिक है। यही कारण है कि वे (शङ्कर) सिद्ध पारमार्थिक धरातल से समस्या पर विचार करते हैं। दूसरी ओर तंत्र-शास्त्र जो कि एक व्यावहारिक साधना शास्त्र है, जीव के धरातल से पदार्थ पर विचार करता है।

हमारे लिए जगत् और हम सभी यथार्थ हैं। स्रष्टा ईश्वर भी यथार्थ

1. शक्ति एण्ड शाक्त - पृष्ठ 145

है। इसलिए सृष्टि एवं शक्ति के रूप में शिव जगत् में विकसित होते हुए सृष्टि करता है और तब सभी जीवों का आविर्भाव होता है। यह प्राचीन औपनिषदिक् सिद्धान्त है कि ''मकड़ी वास्तव में स्वयं जाल बनाती है तथा जाल का पदार्थ भी उसी का है।'' शाक्त सिद्धान्त के अनुसार-मायाशक्ति चित्शक्ति का ही परिणाम है। प्रलय के समय प्रक्रिया ठीक विपरीत हो जाती है। मायाशक्ति का लय चित्तशक्ति में होता है तथ चित्शक्ति का लय चित् या ब्रह्म में होता है।[1]

शक्ति के प्रकाशन के प्रगाढ़तमरूप के विषय में शाक्त सिद्धान्त की स्पष्ट उद्घोषणा है कि खनिज जगत् (निर्जीवजगत्) में तमोगुण का बाहुल्य है, जबकि वनस्पति जगत् में न्यूनरूप में तमस् के साथ-साथ रजस् और सत्वगुण भी हैं। पशुजगत् में रजस और सत्त्व गुण की मात्रा अपेक्षाकृत अधिक है। मनुष्य जगत् में अधिक से अधिक सत्त्व गुण की ओर प्रवृत्ति है। सर्वाधिक एवं सर्वोत्कृष्ट रूप में सत्त्वगुण मोक्ष की अवस्था में रहता है। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि आत्मा के सच्चिदानन्दस्वरूप का अधिक से अधिक प्रकाशन मनुष्य का विशेषाधिकार एवं कर्त्तव्य हैं। इसलिए नैतिक जगत् का वह जीवन है, जिसमें प्रेम, सेवा और त्याग के द्वारा प्रेम और आनन्द की वृद्धि होती है।

शक्ति के विकास (स्थूल जगत्) का वर्णन करते हुए हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि शाक्त दर्शन, श्रेणियों के सांख्य सिद्धान्त (सांख्य दर्शन के परिणामवाद) का विस्तार इस ढंग से करता है कि वह सांख्य और वेदान्त के बीच समन्वय स्थापित कर लेता है। सांख्य-दर्शन ईश्वर को स्वीकार नहीं करता है। इसका विचार है कि जगत् त्रिगुणमयी (सत्त्व, रजस् और तमत्) अचेतन प्रकृति का परिणाम है। यह कहता है कि पुरुष के सामीप्य के कारण प्रकृति अपनी निष्क्रिय अवस्था से सक्रिय अवस्था में परिवर्तित होती है। फलस्वरूप सृष्टि का विकास इस क्रम में होता है—महत् या वृद्धि, अहंकार, मनस्, पञ्चज्ञानेन्द्रियाँ, पञ्चकर्मेन्द्रियाँ, पञ्चतन्मात्राएँ तथा

1. गारलैण्ड ऑफ लेटर्स - पृष्ठ 48-49

पञ्चमहाभूत–आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी। इसके बाद पञ्चीकरण प्रक्रिया से सृष्टि का निर्माण होता है।

ये तेइस तत्त्व और प्रकृति मिलाकर कुल चौबीस तत्त्व हैं तथा पच्चीसवां तत्त्व पुरुष है। अहंकार के सात्विक अंश (सात्विक अहंकार) से मनस् और ज्ञानेन्द्रियाँ, राजसिक अंश से कर्मेन्द्रियाँ तथा तामसिक अंश से पञ्चतन्मात्राएँ प्रादुर्भूत होते हैं। इस सम्बन्ध में विज्ञानभिक्षु का मत कुछ अलग है। उनका कहना है कि मनस् सात्विक अहंकार से, कर्मेन्द्रियाँ और ज्ञानेन्द्रियाँ (10) राजसिक अहंकार से तथा पञ्चतन्मात्राएँ तामसिक अहंकार से उत्पन्न होते हैं।

सृष्टि–प्रक्रिया का क्रम चाहे जो हो, 'जगत् की उत्पत्ति हेतु निष्क्रिय पुरुष और अचेतन प्रकृति के बीच परस्पर सम्बन्ध कैसे स्थापित हो जाता है?' इस प्रश्न का सम्यक उत्तर सांख्य दर्शन के पास नहीं है। इस सम्बन्ध में अन्ध –पङ्गु न्याय का परम्परागत दृष्टान्त दिया जाता है। जैसे लङ्गड़ा आदमी अन्धे के कन्धों पर बैठकर राह बतलाता है और तब अन्धा आदमी दोनों की भलाई कि लिए तथानुसार अनुसरण करता है। किन्तु इस दृष्टान्त में कोई खास दम नहीं है, क्योंकि इसमें दोनों उपमान संकल्पशील और चेतन हैं। किन्तु पुरुष संकल्पशून्य और प्रकृति अचेतन है। यह बड़ी विचित्र बात (विरोधाभास) है कि सांख्य दर्शन प्रकृति का सम्बन्ध चेतन गतिविधि से स्थापित कर देता है। जबकि वह प्रकृति का अचेतन–सिद्धान्त मानता है। यह समझना बहुत दुष्कर है कि कैसे बुद्धि, जो कि चेतन का सिद्धान्त है (सिद्धान्ततः चेतन है) अचेतन प्रकृति का परिणाम हो जाता है।

शाक्त दर्शन में 36 तत्त्वों को माना गया है।[1] इस मान्यता के कारण पुरुष और प्रकृति के बीच की खाई मिट जाती है तथा एक बहुत ही मौलिक एवं उल्लेखनीय ढंग से जड़ और चेतन की अवधारणा में भी एकरूपता (समन्वय) स्थापित हो जाती है। ये 36 तत्त्व हैं–पृथ्वी से लेकर प्रकृति तक सांख्य के 24 तत्त्व तथा सर्वोच्च तत्त्व पुरुष, माया पञ्च कञ्चुकाएँ (काल, कला, नियति,

---

1. शक्ति एण्ड शाक्त - पृष्ठ 52

विद्या, राग), शुद्ध विद्या, नाद या सदाशिवतत्त्व, बिन्दु या ईश्वर तत्त्व, शक्ति एवं शिव। ये 36 तत्त्व तीन समूहों में विभाजित हैं–(क) पाँच शुद्ध तत्त्व हैं, जो शिव तत्त्व कहलाता है (शिव, शक्ति, नाद या सदा शिव, बिन्दु या ईश्वर तथा शुद्ध विद्या) (ख) सात शुद्धाशुद्ध तत्त्व हैं–पञ्च कञ्चुकाएँ, माया और पुरुष (ग) तथा 24 अशुद्ध तत्त्व हैं–प्रकृति से लेकर पृथ्वी तक।

यह ध्यान देने योग्य बात है कि तत्त्वों की इस योजना के कारण शाक्त दर्शन उस समस्या का समाधान करने में समर्थ हो जाता है, जो अद्वैत वेदान्त के लिए अबूझ पहेली बनी हुई है। यथा–कैसे अपरिवर्तनशील ब्रह्म परिवर्तनशील जगत् के रूप में परिणत हो जाता है? कैसे एक तत्त्व अनेक हो जाता है? शाक्त ब्रह्माण्ड विज्ञान की केन्द्रीय अवधारणा है कि शक्ति परमतत्त्व या ब्रह्म से ही निकलता है तथा वह ब्रह्म से भिन्न नहीं है, अपितु वह ब्रह्म का सक्रिय रूप (गतिशील) है। यथार्थीकरण की प्रक्रिया में सर्जन करने की क्षमता सहित शक्ति ही नाद और बिन्दु है। इस प्रकार नाद और बिन्दु शिवशक्ति के ही पहलू हैं। नाद कान के द्वारा सुनी गई ध्वनि नहीं है। कान के द्वारा सुनी गई ध्वनि (सुना गया शब्द) अशुद्ध तत्त्व से सम्बन्धित है। तथा आकाश का धर्म हैं। सृष्टि की प्रक्रिया में नाद शक्ति का प्रथम दबाब (बल) है। बिन्दु का अभिप्राय किसी चिह्न या बूँद से नहीं है। यह एक ऐसा बिन्दु है जिसमें जगत्–महाप्रलय के समय समाविष्ट (तिरोहित) हो जाता है तथा जिससे प्रथम सृष्टि के समय जगत् अपने को क्रमिक रूप से प्रकाशित करता है। अगला आविर्भूत तत्त्व शुद्ध विद्या है (तत्पश्चात् शुद्ध विद्या का आविर्भाव होता है) इस प्रकार शुद्ध तत्त्व आकारहीनता से आकार (साकार) तक एक शान्तिपूर्ण मार्ग प्रशस्त करता है।

संक्रमण (काल) में अगला कदम (अगली गतिविधि) शुद्धाशुद्ध तत्त्वों से प्रभावित होती है। कञ्चुकों में 'काल' तत्त्व सृजनात्मक –उर्जा है। काल समय सिद्धान्त हैं अन्य कञ्चुकाएँ सृजनात्मक–उर्जा के ही विविध पहलू हैं। अब माया और पुरुष का स्पष्टीकरण आवश्यक है। माया ही कर्ता और कर्म

---

1. द गारलैण्ड ऑफ लेटर्स 7 अ. XV

के बोध का कारण है। कञ्चुकाएँ पूर्ण के अखण्ड ज्ञान को छोटे-छोटे टुकड़ों में तोड़ देती हैं। अतः ऐसे विखण्डन के परिणामस्वरूप प्रत्येक आत्मा में केवल कुछ सीमित ज्ञान ही रह पाता है। इस प्रकार ब्रह्माण्ड चौबीस अशुद्ध तत्त्वों के रूप में विभेदीकरण एवं विजातीयता का अनुभव करता है।

सूक्ष्म जगत् पर विचार करने पर हम पाते हैं कि शक्ति दर्शन मानवीय शरीर की सांस्कारिक धारणा पर बल देता है। कारण, ईश्वर-उपलब्धि स्थान की प्राप्ति का स्थल मानव शरीर में ही स्थित है। योग में इसका प्रतिपादन बहुत ही अनूठा हैं। यहाँ इसे विशेष गरिमा एवं आकर्षण प्राप्त हैं इसका कहना है कि कुण्डलिनी शक्ति (मानव शरीर की सर्वोच्चशक्ति) को जागृत किया जा सकता है। कुण्डलिनीशक्ति के जागृत होने पर शरीर का शुद्धीकरण तथा इसी जीवन में एवं शरीर में आत्मा का परमात्मा से सम्मेलन घटित हो सकता है। इसके अनुसार[1] शरीर में छः चक्र हैं—मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपुर, अनाहत, विशुद्ध एवं आज्ञा। परमात्मा का सर्वोच्च स्थान सहस्रार[2] में स्थित है, जहाँ आत्मा परमात्मा का अवलोकन कर सकता है तथा उसके साथ एकता एवं घनिष्ठता स्थापित कर सकती है। जब कुण्डलिनी शक्ति[3] उपयुक्त साधनों के द्वारा जागृत होती है तो वह मेरुदण्ड में स्थित सुषुम्ना नाड़ी में अधिगमन करती है तथा अपने साथ आत्मा को लिए हुए होती है जो परमात्मा का अवलोकन एवं अनुभव करता है। कमलों के रूप में चक्रों के बारे में या उन कमलों के पङ्खुड़ियों के बारे में या बीजाक्षरों के बारे में या उनमें निवास करने वाले देवी-देवताओं के बारे में—ढ़ेर सारे वर्णन मिलते हैं। इन भारी भरकम बातों के बावजूद व्यावहारिक रूप से यह गणित (बीजाक्षर आदि) आज अज्ञात है। उपरोक्त तथा कथित कमल जागतिक फूलों के समान नहीं है। उनका एक शारीरिक एवं मनोवैज्ञानिक पहलू है। शारीरिक पहलू के रूप में वे मेरुदण्ड के अपने मनोवैज्ञानिक पहलू में ये कमल उर्जा एवं प्रकाश के क्षेत्र हैं, जिसे जीवन में मनोवैज्ञानिक एवं

---

1. षटचक्र निरूपणम् : तांत्रिक ग्रन्थ - Vol. II.
2. सौन्दर्यलहरी श्लोक - 9
3. देखें आर्थर एवलोन की सरपेंट पावर की भूमिका।

आध्यात्मिक रूप से अनुभूत किया जाता है। योग–नाड़ियाँ साधारण भौतिक नाड़ी नहीं है। बल्कि वे निर्देश या दिशा की सूख्मतर रेखाएँ हैं जिससे होकर महत्वपूर्ण शक्तियां गुजरती हैं। मनोवैज्ञानिक पक्ष के सन्दर्भ में यह कहा जाता है कि मेरुदण्ड के प्रत्येक ओर नाड़ी जन्तु से जुड़ी हुई 'गंगलिया' की एक शृङ्खला है जिसे इडा और पिंगला कहा जाता है। तथा जो कपाल (सिर) के आधार से यानि सुषुम्ना से लेकर अनुत्रिक (मूलाधार या जननेन्द्रिय) तक फैला हुआ है। यह रीढ़ की हड्डी के साथ संचारण व्यवस्था में हैं।[1]

जब हम स्पष्ट रूप से मस्तिष्क में शारीरिक एवं मनोवैज्ञानिक क्षेत्रीय केन्द्रों की इस समास्वाद को धारण करते हैं तो हम सूक्ष्म जगत् के बारे में शाक्त दर्शन के महत्त्व को समझ सकते हैं। इडा और पिंगला न केवल नाड़ी हैं, बल्कि वे प्राणशक्ति की वाहिकाएँ भी हैं। आधाररूप में योग शरीर की शुद्धता है। मनुस्मृति[2] एवं अन्य कई ग्रन्थों में एक प्रसिद्ध श्लोक है, जिसके अनुसार हमें शरीर की अशुद्धता को प्राणायाम के द्वारा परिमार्जित करना चाहिए। अपने पापों को धारणा के द्वारा नष्ट करना चाहिए। प्रत्याहार के द्वारा अपने को सांसारिकता से असम्बद्ध करना चाहिए तथा ध्यान के द्वारा दिक्शक्ति की सभी विरोधिनी शक्तियों को दूर करना चाहिए। यम और नियम योग समाधि के जीवन की नींव के निर्माता है। इस प्रकार शरीर प्राणायाम के द्वारा शुद्ध होता है। शरीर की अशुद्धता कुण्डलिनी शक्ति के उर्ध्वगमन में बाधा पहुँचती हैं, जबकि शुद्धता उसके उर्ध्वारोहण में सहायक होती है। मुख्य नाड़ियों की संख्या चौदह है, किन्तु इनमें भी इडा और पिंगला एवं सुषुम्ना की स्थिति सर्वोच्च है, क्योंकि प्राणशक्ति इसी के माध्यम से मूलाधार से सहस्रार तक की यात्रा तय करती है। हमें काल्पनिक एवं आलंकारिक वर्णन के द्वारा स्पष्ट, सटीक एवं समन्वयात्मक विचारों से संकीर्ण दृष्टिकोण की ओर नहीं बहकना चाहिए। उदाहरणस्वरूप इडा, पिंगला एवं सुषुम्ना की तुलना प्रसिद्ध नदियों–गंगा, यमुना एवं सरस्वती से की गई है। मूलाधार को जो तीनों का सम्मिलन स्थल है, त्रिवेणी कहा गया

---

1. देखें - बुडरफ- द सरपेन्ट पॉवर की भूमिका।
2. III, 72 तथा देखें - दर्शनोपनिशद-प्राणायाम लक्षण (योग उपनिषदस, अडयार)

है पुनः इडा नाड़ी का पीला (विवर्ण, फीका) चन्द्रमा, पिंगला नाड़ी को लाल (रक्तिम) सूर्य एवं सुषुम्ना नाड़ी को अग्नि कहा गया है।[1]

इस प्रकार हमारे मेरुदण्ड के अन्दर (मूलाधार से लेकर आज्ञा चक्र तक छः चक्र हैं), जिसे शक्ति का निवास स्थल कहा गया है। इन सबसे ऊपर सहस्रार है, जहाँ शिव का स्थान है। शाक्त साहित्य में उनकी विस्मयकारी महत्ता है। उनके विस्तार में जाना सम्भव नहीं होगा। फिर भी यह स्मरण करने योग्य है कि कुण्डलिनी योग का मार्ग न केवल शुद्धता का मार्ग है, बल्कि यह शरीर एवं मस्तिष्क (मन) की शक्ति का भी मार्ग है। तथा यह सिद्धियों का मार्ग है। पतञ्जलि के योग सूत्र में[2] सिद्धियों का वर्णन बड़े विस्तार से किया गया है, किन्तु तंत्रों में उससे भी अधिक विस्तृत ढंग से वर्णन मिलता है। श्वेताश्वेतर उपनिषद[3] के एक प्रसिद्ध मंत्र के अनुसार यौगिक उपलब्धियों (सिद्धियों) को प्राप्त पुरुष, (योग सिद्ध व्यक्ति) जिसने अपने शरीर को आग्नेय योग (प्राप्तयोगाग्निमयं शरीरम्) का ढाँचा बना लिया है, उसे न तो कोई रोग पकड़ेगा, न ही बुढ़ापा और न ही मृत्यु उसे दबोचेगी। साथ ही यह भी कहा गया है कि वह सहस्रार में आत्मा एवं परमात्मा के सम्मिलन के द्वारा अनन्त आन्तरिक हर्षोन्माद का आनन्द उठा सकता है।

हमें इस प्रकार जगत् की उत्पत्ति एवं इस जीवन में तथा हमारे इस वर्तमान शरीर में योग के माध्यम से ईश्वरानुभूति की उपलब्धियों के बारे में काफी वर्णन प्राप्त होता है। किन्तु शक्तिवाद की महत्ता केवल योग पर बल देने के कारण नहीं है, बल्कि उसकी महत्ता योग के विभिन्न पहलुओं में समन्वय स्थापित करने में है। योग भक्ति को समर्पण का एक केन्द्रीयकृत एवं प्रदीप्त (उत्कट) आवेग बनाता है। तथा ज्ञान को दृष्टि का एक उद्दीप्त शुद्ध (श्वेत) ज्योति के रूप में फैलाता है। बिना इसकी सहायता के भक्ति अश्रु प्रवण भावना के अलावा और कुछ भी नहीं है तथा ज्ञान तर्क विद्या के सिवा कुछ भी नहीं है।

1. देखें - शांडिल्य उपनिष्द्द अध्याय I,IV
2. योगसूत्र - III, विभूतिपाद
3. वही - II.12

शक्तिवाद, हठयोग, राजयोग, मंचयोग एवं लययोग में समन्वय स्थापित करता है। जिसे वे उन्हें छोड़ देते हैं तथा उनके आचार्य एक-दूसरे को सम्बन्धित एवं विनष्ट करते हैं।

शक्तिवाद, का मन्त्रों पर विशेषबल देना-निश्चय ही स्मरणीय है, खासकर गायत्री मन्त्र, हंसमंत्र, पंचदशी और षोडशी मन्त्रों पर। यह कहता है कि जब मंत्र चैतन्य जागृत (क्रियाशील) होता है तो यह जगत् के लिए परोपकार का एक शक्तिशाली माध्यम हो जाता है। साथ ही मंत्र एवं देवता की अनुकम्पा से व्यक्ति की आध्यात्मिक उन्नति होती है। चिन्तन विज्ञान एवं भाषा में अभिव्यक्ति अर्थात् मंत्र विद्या का उद्भव शब्द-ब्रह्म से हुआ है। ऐसा कहने का अभिप्राय यह है कि विश्व के सम्बन्ध में कहा जाता है कि यह वर्णों (अक्षरों) से मिलकर बना है।[1] वर्णमाला काली का कण्ठाभरण (कण्ठाहार) है। निस्सन्देह सर्वोच्च संकेत ओर अभिव्यक्ति प्रणव (ॐ) हैं। ललितोपाख्यान में हमें सहस्राक्षरी मंत्र प्राप्त होते हैं।[2]

शक्त्युपासना के व्यवहार पक्ष एवं सिद्धान्त पक्ष हमें यह कहने के लिए बाध्य करता है कि शक्ति सगुण ब्रह्म है।[3] देवी सम्भवतः दूसरी सत्ता है जो सर्वोच्च सत्ता की उर्जा को जागृत करती है, जिस सत्ता को हम निर्गुण ब्रह्म कह सकते हैं। शायद यही कारण है कि शंकर उसे परमब्रह्ममहिषी कहकर संबोधित करते हैं, जो साहित्यिक रूप से सर्वोच्च सत्ता की पत्नी एवं रानी है। यद्यपि सामान्यतया शक्ति को प्रधान, प्रकृति एवं माया के नाम से अभिहित किया जाता है। किन्तु वह इनमें से कोई भी नहीं है। उदाहरणस्वरूप प्रधान को ही लें, सांख्य-दर्शन के अनुसार प्रधान एक वस्तु है, जो जड़ है। परिणामतःवह सभी आध्यात्मिकता से रहित है। विशिष्टाद्वैत सिद्धान्त के अनुसार प्रकृति जड़ एवं निष्क्रिय वस्तुओं का स्वभाव है। माया के रूप में वह सभी आध्यात्मिकता से रहित है। विशिष्टाद्वैत सिद्धान्त के अनुसार प्रकृति से जड़ एवं निष्क्रिय वस्तुओं का स्वभाव है। माया के रूप में वह सभी प्रकार की भ्रान्तियों का मुख्य कारण

1. देखें, वुडराफ-दें गारलेण्ड ऑफ लेटर्स 1922
2. वही - pp 33-34
3. ब्रह्माण्ड पुराण - अ. 40

है। किन्तु शक्ति–दर्शन के अनुसार जैसा कि फरक्यूहर का प्रतिपादन है, कि यह मूल प्रकृति है तथा विश्व केवल शक्ति का ही विस्तार (फैलाव) है।[1] हम इस अध्याय का समापन शक्तिसंस्कृति[2] से कर सकते हैं। योग/दर्शन जैसाकि उसका मानना है–छः चक्रों को सम्बन्धित करता है। वे चक्र हैं मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपुर, अनाहत, विशुद्ध एवं आज्ञा।[3] अन्तिम आज्ञा चक्र स्पष्टतया शक्ति का स्थान है। इसके बिना, प्रथम चक्र कार्य ही नहीं कर सकता (सक्रिय ही नहीं हो सकता)। पुरुष का यह स्वभाव है कि वह स्वयं के द्वारा सक्रिय नहीं हो सकता एवं उद्दीपन (उत्तेजना) बिना किसी बाहरी शक्ति के द्वारा होना चाहिए, जो कि शक्ति हैं। वह वही है जिसे हम शिवशक्ति के अपार्थक्य के रूप में जानते हैं।[4] यह प्रशंसनीय एवं स्तुत्य अवधारणा है दिव्य शक्ति की अथवा मातृ–शक्ति की। इस उच्चतम अवधारणा ने जन मानस को सञ्चालित एवं प्रभावित किया है तथा आध्यात्मिक उन्नति का मार्ग प्रशस्त किया। हमारे इस प्राचीन देश में यह शुद्धरूप से भारतीय अवधारणा है। तथा लोक एवं परलोक दोनों को सुधारती है।

---

1. रीलिजियस लिट्रेचर ऑफ इंडिया – पृष्ठ 201
2. देखें, गार्वे, सांख्य एण्ड योग, pp. 34, 36
3. वही, पृष्ट 91, (कुण्डलिनी शक्ति मनुष्य के शरीर में होती है तथा मूलाधार चक्र में सुप्त रहती है)
4. जी. राव, हिन्दू इकोनोग्राफी – pp. 328-29

अध्याय 15

देवी माहात्म्य में शाक्त-धर्म और विश्वात्मता

विश्वेश्वरी त्वं परिपासि विश्वं विश्वात्मिका धारयसीति विश्वम्।
विश्वेशबन्द्या भवती भवन्ति विश्वाश्रया ये त्वयि भक्तिनम्राः।।

अर्थात् सभी की समन्वित शक्ति का नाम ही देवी या शक्ति है।

हमारे देश की सांस्कृतिक धरोहर को अक्षुण्ण बनाये रखने में पुराणों का अमूल्य योगदान रहा है। पुराणकारों ने भारतीय जनमानस को नजदीकी से देखा और समझा था तथा उनकी भावनाओं को एक चिन्तन शैली प्रदान की थी। भारतीय ज्ञानगंगा को हिमालय से कन्याकुमारी तक तथा सुदूर द्वारका से लेकर पुरी तक प्रवहमानता तथा चिरन्तनता प्रदान की थी। शास्त्रीय ज्ञान की परिपक्वता तथा जनमानस की जीवन्तता–दोनों को ही पुराणकारों ने अपनी कृतियों में समाहित किया था। यही कारण है कि पश्चिम के विद्वानों तथा शास्त्रीय आचार्यों द्वारा चिरकाल तक उपेक्षित रहने पर भी पुराण, हमारी संस्कृति, हमारी चिन्तन धारा, हमारी साहित्यिक गतिविधियों तथा जनमानस के दिलों तथा घरों पर–अपना अक्षुण्ण प्रभाव बनाए हुए हैं। पुराण में कथामाध्यमों तथा प्रतीकों द्वारा चिन्तन की ऊँचाइयों को सरल, रुचिकर तथा हृदयगम्य बना कर हमारे सामने प्रस्तुत करते हैं तथा जीवन को सत्यता का आधार देती हैं। सत्य, सदाचार तथा ईमानदारी, अहिंसा आदि जीवनमूल्यों को गुरुपदेश न कहकर मित्र की सलाह रूप में प्रस्तुत करते हैं। पुराणकारों की दृष्टि कहीं भी संकुचित न होकर, पूरे भारत को ही नहीं अपितु विश्व को एक समग्र एवं समन्वित रूप में देखने की रही है।

पौराणिक शाक्तधर्म इसी समग्र दृष्टि की उपज है, तथा समन्वित शक्ति का परिचायक है। मार्कण्डेय पुराण का देवी माहात्म्य–प्रारम्भ से अन्त तक देवी को इसी रूप में परिस्थापित करता है। पुराण में देवी वही है जो–'सर्वभूतेषु संस्थिता' है। रूप जो चाहे आप दे सकते हैं। देवी माहात्म्य पंचम अध्याय में लगभग पचास श्लोकों में देवी के उन विभिन्न रूपों की परिकल्पना की है–जिनमें मानवमन उसे स्वीकार कर सकता है, या करना चाहेगा। देवी को विश्व का भरण पोषण करने वाली बताया गया है। ऐसा कोई प्राणी नहीं जो माता के दुलार को, प्यार को, चाह को भुला सके। यद्यपि सभी पुराणों में देवी या शक्ति का वर्णन न्यूनाधिक्य उपलब्ध होता है, परन्तु कुछ पुराणों में उसकी महिमा यत्र-तत्र सर्वत्र दिखलाई पड़ती है। जिनमें–मार्कण्डेय पुराण, भागवत पुराण, स्कन्द पुराण, कूर्म पुराण, वामन पुराण, विष्णु पुराण, मत्स्य पुराण, आदि हैं। देवी माहात्म्य तो हैं ही–शक्तिपरक जो मार्कण्डेय पुराण का अंश है तथा दुर्गासप्तशती के नाम से प्रसिद्ध है। देवी माहात्म्य ने तन्त्रसम्प्रदाय के उन सभी तत्त्वों को शाक्तधर्म से अलग कर दिया है–जिनसे नैतिकता के उन्मूलन का डर था। चरित्र के पतन का, चिन्तन के अवमूल्यन का, जीवन मूल्यों के ह्रास को अवकाश ही नहीं दिया है। शाक्तधर्म की अच्छाइयों को वर्णित किया है।

व्यक्ति की अहंकारगत ऊँचाइयों का नाम 'राक्षस' होता है, ऐसा पुराण कहता है। चाहे वह शुम्भ हो, महिषासुर हो, चाहे मधुकैटभ हो। वे दूसरे की उन्नति स्वतन्त्रता, सुख-शान्ति तथा स्वाभिमान देख नहीं सकते। प्रत्येक अच्छी वस्तु उनकी होनी चाहिए। प्रत्येक सुन्दर कन्या उनकी उपभोग्या होनी चाहिए। प्रत्येक बलवान व्यक्ति उनकी सेवा में तत्पर होना चाहिए–यही तो वृत्ति है जिसे पुराणकार राक्षसी वृत्ति कहता है तथा जिसके उन्मूलन के लिए देवी जन्म लेती है, या धराधाम पर अवतरित होती है। देवी माहात्म्य के अनुसार देवी वह विष्णु नहीं जो क्षीरसागर में सोता रहता है तथा कभी-कभी धराधाम पर आता है। देवी वह शिव नहीं जो कैलाश की ऊँचाइयों से नीचे आता ही नहीं या आता है तो संहार का प्रतीक बन कर ही आता है। देवी वह शक्ति है जो विष्णु और शिव में भी है, तथा हर मानव, हर प्राणी,

हर पदार्थ में है। प्रत्येक की सारवत्ता का नाम देवी है। वह शिव का शिवत्व है तथा उसके बिना शिव भी शव है।

शिवः शक्त्या युक्तो यदि भवति शक्तः प्रभवितुम्।

संसार की ऊँचाइयों–अर्थात् पर्वतों पर रहते हुए (पार्वती) भी वह सबसे ज्यादा नजदीक है। ऐसा कोई दुर्गम प्रदेश नहीं–जहाँ देवी न रहती हो–इसीलिए तो दुर्गा कहलाती है। वह किसी की कमजोरी नहीं तभी तो वह शक्ति है। शक्तिमान् की शक्ति वही है, चन्द्रमा की चांदनी की तरह, अग्नि के ताप की तरह। वह हमेशा हमारे साथ रहती है–अलग होने का प्रश्न ही नहीं–वही तो जीवनाधायिका है। वह तो व्यक्तिगत स्तर पर शक्ति का ऐक्य है। समष्टिगत रूप में भी देवी किसी एक की शक्ति का नाम नहीं–जिससे वह व्यक्ति अहंकार कर सके। वह तो सभी देवताओं की समन्वित शक्ति का रूप है। जिन देवताओं को अभिमान हो गया था उनकी परीक्षा (या गर्वहरण) का संकेत केनोपनिषद् देता ही है। देवी तो ऋग्वेद के इन शब्दों के साथ अवतरित होती है।

'अहं राष्ट्री सङ्गमनी वसूनाम्'। वागाम्भृणी सूक्त

ऋग्वेद की यह उक्ति वाग्देवता की कि वह 'राष्ट्री' है कितनी सार्थक है। (धन तो मिले पर विदेशों से नहीं अपितु राष्ट्र से–यह कामना होनी चाहिए प्रत्येक व्यक्ति की–नेता की)। पता नहीं उस समय 'राष्ट्री' का क्या अर्थ रहा होगा परन्तु आज के सन्दर्भों में अत्यन्त ही सार्थक है। शक्ति की उद्घोषणा कि मैं राष्ट्रीय हूँ तथा शक्ति का मूर्त्तरूप धन भी मैं ही हूँ बहुत ही अच्छा सन्दर्भ है। तभी तो निरुक्त में देवी का आदेश मिला– विद्याविद को 'शेवधिष्टेऽस्मि–' मेरी संरक्षा तथा विकास में तेरा हित है। 'निधिपाय ब्रह्मन्' जो मेरी रक्षा कर सके ऐसे व्यक्ति को मुझे हस्तान्तरित करते चलो, तभी जीवन की सार्थकता है–'वीर्यवती यथास्याम'। अर्थवत्ता ही जीवन में काफी नहीं होती अपितु सार्थकता ही जीवन की सफलता होती है। वही शक्ति का जीवन्त रूप है।

महिषासुर संग्राम में पुराण दिखाता है कि सभी देवता एकत्र होते हैं– तथा कामना करते हैं–राक्षसों पर विजय की। तदनन्तर सभी देवताओं के

अंश से देवी प्रकट होती हैं तथा सभी देवता स्तुति करते हैं। अपने-अपने अस्त्र प्रदान करते हैं–देवी को, अपना-अपना प्रभाव देते हैं तथा अपनी सामर्थ्यानुसार धन एवं वैभव प्रदान करते हैं।[1]

क्या यह कथानक नहीं बता रहा कि देवताओं की समन्वित शक्ति–देवी कहलाती है। सभी देवताओं के तेज अपनी-अपनी अलग पहचान न रख कर एक नई शक्ति के रूप में उभर कर प्रत्यक्ष आते हैं। महिषासुर जैसी विश्वजयी शक्ति का नियमन तभी सम्भव हो सकता है जब सभी अच्छे संकल्प वाले देवता या लोग एकत्रित होकर कार्य करें–संगठित रहें। पुराणकार ने इस प्रसंग के माध्यम से हमें एक नई दृष्टि, नई दिशा प्रदान की है। **'विश्वेश्वरी त्वं परिपासि विश्वम्।'**

देवी की व्यापकता दिखलाने के लिए पुराणकार ने देवी के निम्न विशेषण दिए हैं। सर्वमन्त्रमयी, सर्वविद्या, सर्वशास्त्रमयी, सर्वास्त्रधारिणी, सर्वदानवघातिनी, सर्ववाहन वाहना, ब्रह्मवादिनी, सर्वयोग–समन्विता, सर्वाभरणभूषिता, मातरः सर्वा, सर्वकाम प्रदायिनी, सर्वगता–आदि।

1. देवी को सब कामों को करने वाली कहा गया है। 'देवी त्वं भक्त सुलभे सर्वकार्य विधायिनी।' अर्थात् वह भक्तों के नजदीक है और उनका प्रत्येक कार्य सम्पन्न करती है।
2. वह हमेशा ही कोमलचित्त वाली हैं।

   सर्वोपकारकरणाय सदार्द्रचित्ता।
3. **सर्वमंगलमांगल्ये शिवे सर्वार्थसाधिके।**

   अर्थात् वह सभी प्रकार से मंगल प्रदान करने वाली हैं तथा व्यक्ति के सभी प्रयोजन सिद्ध करती है।

---

1. दृष्टव्य दुर्गासप्तशती चतुर्थ अध्याय–

4. वह सभी के कष्ट दूर करती है। सभी के स्वरूप में स्थित है, तथा सभी शक्तियों से विभूषित हैं।
   सर्वस्वरूपे सर्वेशे सर्वशक्ति-समन्विते।
   सर्वस्यार्त्तिहरे देवि नारायणी नमोस्तुते॥[1]
5. सारी बाधाओं को शान्त करती है तथा सारे जगत् की स्वामिनी है।

   सर्वबाधा प्रशमनं त्रैलोक्यस्याखिलेश्वरी॥

देवी माहात्म्य के तीसरे चरित्र में देवी एक ही कही गई है। परन्तु विभिन्न देवताओं की शक्तियाँ अपनी-अपनी पहचान रखकर देवी के पास आकर खड़ी हो गईं। ब्रह्मा के शरीर से ब्रह्माणी, विष्णु से वैष्णवी, वाराह से वाराही, इन्द्र से इन्द्राणी, नरसिंह से नारसिंही, कुमार से कौमारी, महेश माहेश्वरी तथा देवी के शरीर से चामुण्डा या शिवदूती उत्पन्न हुई तथा इन सभी देवियों से समावृत महादेवी-शुम्भ-निशुम्भ से युद्ध करने गई। ये सभी देवियाँ-अपने-अपने देवताओं के स्वरूप, आयुध, भूषण, शक्ति एवं वाहन आदि के साथ उत्पन्न हुईं थीं-और बाद में सभी देवी के शरीर में समाविष्ट हो गईं।[2]

एतस्मिन्नन्तरे भूप विनाशाय सुरद्विषाम्।
भवायामरसिंहानामति वीर्यबलान्विता॥
ब्रह्मेश गुह विष्णूनां तथेन्द्रस्य च शक्तयः।
शरीरेभ्यो विनिष्क्रम्य तद्रूपैश्चण्डिकां ययुः।
यस्य देवस्य यद्रूपं यथाभूषणवाहनम्।
तद्वदेव हि तच्छक्तिरसुरान् योद्धुमाययौ॥

1. **हंसयुक्तविमानाग्रे साक्षसूत्रकमण्डलुः।**
   आयाता ब्रह्मणः शक्तिर्ब्रह्माणी साभिधीयते॥

---

1. दुर्गा माहात्म्य - अ. 11
2. दुर्गा माहात्म्य - अ. 8

2. माहेश्वरी वृषारूढा त्रिशूलवरधारिणी।
महाहिवलया प्राप्ता चन्द्ररेखाविभूषणा।।

3. कौमारी शक्तिहस्ता च मयूरवरवाहना।
योद्धुमभ्याययौ दैत्यानम्बिका गुहरूपिणी।।

4. तथैव वैष्णवी शक्ति गरुडोपरि संस्थिता।
शंख चक्र गदा शार्ङ्ग खड्ग हस्ताभ्युपाययौ।।

5. यज्ञ वाराहमतुलं रूपं या विभ्रतो हरे।
शक्ति साप्याययौ तत्र वाराहीं विभ्रती तनुम्।।

6. नारसिंही नृसिंहस्य बिभ्रती सदृशं वपुः।
प्राप्ता तत्र सटाक्षेप क्षिप्तनक्षत्रसंहितिः।।

7. वज्रहस्ता तथैवेन्द्री गजराजोपरिस्थिता।
प्राप्ता सहस्रनयना यथा शक्रस्तथैव सा।।

8. ततो देवी शरीरात्तु विनिष्क्रान्ता विभीषणा।
चण्डिका शक्तिरत्युग्रा शिवाशक्ति निनादिनी।।

9. ब्राह्मी-माहेश्वरी चैन्द्री कौमारी वैष्णवी तथा।
चामुण्डा चैव वाराही लक्ष्मींश्च पुरुषाकृतिः।।

इस प्रकार सभी देवताओं की शक्तियाँ अपना स्वरूप अलग रखते हुए भी देवी के साथ अन्याय के विरोध में युद्ध को तत्पर रहती हैं। तभी दानवों का, दुर्धर्ष शक्तियों का, राक्षसों का, समाज विरोधियों का संहार होता है। तथा अन्त में समाज का, देश का, विश्व का तथा मानव मात्र का कल्याण होता है।

---

1. दुर्गा माहात्म्य - अ. 8.11-22

Durgā—Having ten arms and killing demon Mahisha with her Triśula.

Ambikā —With two sons. Stone, Orissa, 12th-13th century AD. By Courtesy of British Museum, London.

Vaiśnavi—with four arms and riding on Garuda, 12th cent. AD. terracota, Ashutosh Museum, Calcutta.

Durgā—sitting with decorative motif. Parasurāmeshwar temple, Bhubneshwar.
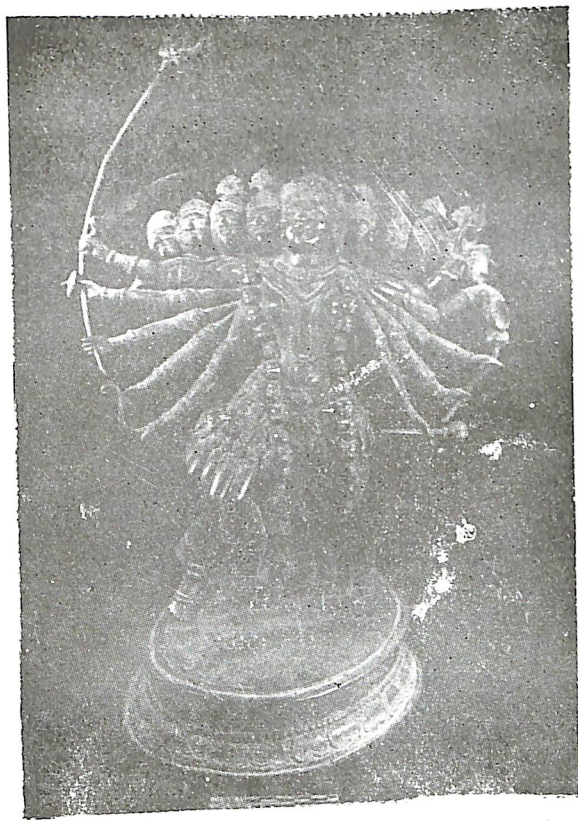
Kālī—rare image of Kālī with many faces, hands and feet.
Gwalior Museum (M.P.)

Nārāyaṇī—stone image, having all symbols of viṣṇu, Bhuhneshwar.

Mahishāsuramardini with eight hands, stone South India. *(front page)*

Pārvati, wife of Śiva – from South Indian Temple.

सन्दर्भ ग्रन्थ

1. अथर्ववेद-संपादित-सातवलेकर, बम्बई
2. ब्रह्मपुराण-गुरूमण्डल ग्रन्थमाला, कलकत्ता
3. भागवतपुराण-गीताप्रेस गोरखपुर
4. ब्रह्मसूत्र (शांकरभाष्य)-मोतीलाल बनारसी दास, दिल्ली
5. देवीभागवत पुराण-पंडित पुस्तकालय-काशी, 1956
6. देवीपुराण-संपादित डॉ. पुष्पेन्द्र कुमार, दिल्ली, 1976
7. गीता-गीता प्रेस, गोरखपुर
8. हरिवंश-आलोचनात्मक संस्करण-पूना, 1969
9. हर्षचरित-बाणभट्ट
10. कालिकापुराण-संपादित-विश्वनारायण शास्त्री
11. केनोपनिषद-शांकरमाष्य सहित
12. कुलार्णव तन्त्र-आर्थर एवलन
13. लिंगपुराण-गुरूमण्डल ग्रन्थमाला, कलकत्ता
14. मनुस्मृति-चौखम्वा संस्कृत सीरीज, बनारस
15. महाभागवत पुराण-संपादित-डॉ. पुष्पेन्द्र कुमार, 1983
16. मार्कण्डेय पुराण-गुरूमण्डल ग्रन्थमाला- कलकत्ता, 1962
17. मृच्छकटिकम् एम. आर. काले
18. प्राण तोषिणी तन्त्र
19. रामायण-गीता प्रेस, गोरखपुर
20. ऋग्वेद-सातवलेकर
21. शक्ति संगमतन्त्र (कालीखण्ड), बडौदा
22. सप्तशती-वासुदेव शरण अग्रवाल
23. शाक्तोपनिषद- ए. एम. शास्त्री

24. शतपथ ब्राह्मण-अच्युत गन्थ माला, 1974
25. सौन्दर्य लहरी-एस. एस. शास्त्री-अदयार लाइब्रेरी, 1937
26. श्रीसूक्तम्-सातवेलकर
27. स्कन्दपुराण-वेकटेश्वर प्रेस, बम्बई
28. ब्रह्मसूत्र भाष्य-श्रीकण्ठ, रमा चौधरी, कलकत्ता
29. श्वेताश्वतरोपनिषद-तुलसीराम शर्मा, दिल्ली
30. तन्त्रसार- वंगवासी प्रेस
31. वराहपुराण- वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई

सहायक पुस्तकें

1. ए. बी. कीथ- रिलीजन फिलासफी ऑफ वेदाज Voi. III
2. ए. ए. मेक्डोनल-न्यू उपनिषद
3. ए. ए. मेक्डोनल -वैदिक माइथौलाजी
4. ए. ए. मेक्डोनल-संस्कृत इंग्लिश डिक्सनरी
5. ए. ए. मेक्डोनल-एशियाटिक रिसर्चिस
6. ए. ए. मेक्डोनल -आर्ट एन्ड आर्किटेक्चर ऑफ, बीकानेर
7. ए. कुमारस्वामी-दी रिलीजन्स आफ इन्डिया, लन्दन
8. भट्टाचार्य-एन. एन., दी इन्डियन मदर गोडेसेज-कलकत्ता, 1971
9. आर. जी. भण्डारकर वर्क्स
10. बोम्बे गजेटियर, 1952
11. बोम्बे कर्नाटक कलेक्शन-न, 93
12. बोस एव हलदर-दी तन्त्राज एण्ड देअर रिलीजन
13. बुलेटिन ऑफ स्कूल ऑफ ओरियन्टल एण्ड अफ्रीकन स्टडीज, लन्दन
14. बाल-दी जंगल लाईफ
15. चार्लेज-इलियट- हिन्दुज्म एण्ड बुद्धिजम, लन्दन
16. डी. सी. सरकार-सलेक्ट संस्कृत इन्सक्रिप्सनस
17. एन्साईकलोपीडिया ऑफ रिलीजन एण्ड एथिक्स

18. एपिग्राफिया इन्डिका
19. ई. ए. पाइने- दी शाक्ताज; आक्सफोर्ड, 1933
20. ई. ये पेरिस-दी मौखरीज. मद्रास, 1934
21. गंगा गोल्डन जुबिली म्यूजियम, बीकानेर
22. एच, डी, संकालिआ-आर्क्यालाजी ऑफ गुजरात, बम्बई, 1941
23. एच, सी, रे; डाइनिस्टिक हिस्टरी ऑफ नार्दन इन्डिया, कलकत्ता
24. इन्डियन कलचर vol.I-VIII
25. इन्डियन एन्टीक्वेरी Vol 5-7-8
26. जे मार्शल-महेन्जोदारो एन्ड इन्डस सिविलाईजेशन-लन्दन, 1931
27. जे मार्शल-टेक्सिला Vol. II केम्ब्रिज, 1951
28. जे.एन. फर्क्युहर- एन आउटलाईन ऑफ दी रिलिजस लिटरेचर ऑफ इन्डिया, आक्सफोर्ड, 1920
29. जे. एन. सिन्हा-ए. हिस्टरी ऑफ इन्डियन फिलासाफी, 1952
30. जे. एलन-ब्रिटिश म्यूजियम कैटलाग ऑफ कोइनस आफ ऐन्शएन्ट इन्डिया
31. जर्नल. बी बी. आर. ए. एस., Vol., 20
32. जे गोन्डा-एस्पेक्टस ऑफ अरली वैष्णविज्म
33. जान- मेकफ-दी मदर ऑफ ओसस इन दी न्यू टेस्टामेन्ट
34. जे. एफ. फलीट-कार्पस इन्सक्रिप्सनम् इन्डिकेरम Vol. III
35. जॉन वुडरफ- शक्ति एन्ड शाक्त, मद्रास, 1924
36. जॉन वुडरफ- गारलेन्ड ऑफ लेटरस,1924
37. के. जे. विज- हिस्टरी आफ मैत्रकाज आफ वलभी
38. के. एम. पणिक्कर- सर्वे आफ इन्डियन हिस्टरी
39. मेके; फरदर एक्सकेवेशन एट अरली इन्डस सिविलाईजेसन
40. मोती चन्द्र-जर्नल ऑफ यू. पी. हिस्टारिकल सोसायटी
41. म्यूर-ओ. एस. टी. जे.
42. मेक्समूलर-एन्शिएन्ट संस्कृत लिटरेचर

43. एन रमेशन-श्री अप्पय दीक्षित
44. एन. के. ब्रह्मा, दी फिलोसोफी ऑफ हिन्दु साधना
45. पी. कनिघंम-ए. ऐस जे. आर. Vol. 16.
46. पी. कुमार, शक्ति-कल्ट इन एन्शियण्ट इण्डिया
47. आर के मुकर्जी-गुप्त एम्पायर
48. आर. सी. हाजरा- स्टडीज इन दी उपपुराणाज Vol. II
49. रामानुजस टीचिंग इन हिज आन वर्डस; भारतीय विद्यामवन
50. रमा चौधरी- डाक्ट्राइन आप श्रीकंठ, कलकत्ता
51. एस. के. दास-शक्ति और डिवाइन पावर, कलकत्ता, 1935
52. एस. चट्टोपाध्याय- इवोल्यूशन ऑफ थीस्टिक सेक्टस इन एन्शिएण्ट इन्डिया
53. साउथ इन्डियन इन्सक्रिप्सन्स Vol. 9
54. शास्त्री, गोडेसेज इन साउथ इण्डिया
55. दी जर्नल ऑफ ओरियन्टल रिसर्च, मद्रास, Vol. 19
56. यू. एन. घोषाल-स्टडीज इन इन्डियन हिस्टरी एण्ड कलचर, कलकत्ता, 1957
57. वी. आर. आर. दीक्षितार-ललिता कल्ट. मद्रास, 1942
58. विल्सन-ऋग्वेद-इंग्लिश अनुवाद